

मीरा प्रेम दीवानी

राधास्वामी सत्संग ब्यास

ॐ त्रपूर्या ®
Charitable Trust
WZ-5A/1, Ram Nagar,
Choukhundi Chowk,
New Delhi-110018

विषय सूची

प्रकाशक की ओर से	7		
मीराबाई का जीवन	9		
मीराबाई का संदेश	39		
मीराबाई के कुछ संकलित पद	65		
प्रभु मुझे पार उतार	67	तेरी शरण पड़ी	83
उलाहना	67	लागी लगन	83
निवेदन	68	जो घन के घाव सहे	84
विरह-वेदना	68	प्रेम में पागल	85
हरि से मिलाप कैसे हो?	69	प्रेम का अंकुर	87
ज्योति में ज्योति मिली	70	हंसा चुगत जुवार	88
निद्रा-विहीन रातें	70	संसार की असारता	88
नाम का सुमिरन	71	गुरु-चरणों की महिमा	89
पचरंग चोला	71	लगन नहीं छूटे	90
दिन थोड़ा रे	73	फेर न मैला होय	91
अलौकिक खिलौना	73	शरण	91
संतों हाथ बिकानी	75	जन्म-मरण के साथी	92
जोगी अजहूँ आयो नाहिं	75	लीनो गोविंदो मोल	93
दृढ़ निश्चय	77	बेगि मिलो आई	94
मैं प्रभु पाया जी	78	अविनाशी वर	94
सूरमा	78	चरखा	95
प्रभु तू रुष्ट क्यों है?	79	सतगुरु की कृपा	97
प्रभु कब रै मिलोगे?	80	सोनै काट न लागै	97
घट का दर्पण	80	दरद न जाने कोय	98
प्रेम का उलाहना	81	छोड़ मत जाना	99
जो मैं साहिब पाऊँ	82	अनमोल अवसर	100
और देव न जानूँ	82	हुआ समुद्र से मेल	101

मगन होय मीरा चली	102	सूरत देख लुभानी	122
राम खुमारी	103	व्याकुल मीरा	122
मुझे लगन लगी	103	प्रभु का वरण	123
दूसरा न कोई	104	बिछुरत प्राण तजे	124
दीया बिन अँधेरा	105	भक्ति की दृढ़ता	125
सत्संग का रस	106	नाम-रस	126
दर्शन दीजो जी	107	शब्द सरोवर धँसी	126
विरह-व्यथा	108	नाम मन बसिया	127
कुँवारी क्यों रही	108	बैरन नींद	128
नाम रतन धन	109	कंगन	129
मैं अपना घर जानी	110	इस काया में	130
भक्ति करे कोई सूरमा	111	वेग पधारो	130
प्रतीक्षा	112	बैरागिन	131
चितवो मेरी ओर	112	मन माने जब तार	132
पानी में मीन प्यासी	113	आज प्रभु मेरे घर रे	132
हरि है हृदय माहिं	113	सोने में सुहागा	133
हरि-भजन की वेला	114	तोही से लागो नेह	134
होली	115	जब भई खाक बराबर	135
नयनों पर बलिहारी	116	प्रियतम का समाचार	135
मनुष्य-जन्म	117	नैना रस पीजै	136
नाम से नेह	117	वृक्ष की टेव	137
गुरुपद-रज की प्यासी	118	प्रभु हाथ बिकानी	137
विरह-बाण	119	व्यर्थ के धंधे	138
सतगुरु की शरण	120	दीवानी मीरा	139
प्रभु राख लई है	120	बुँदमों बूँद समाय रही	139
बाने का बिरद	121		

संदर्भ सूची	141
संदर्भ ग्रंथ	145
शब्दानुक्रमणिका	147
परमार्थ संबंधी पुस्तकें	149

जीवन

मीराबाई का जीवन

मीराबाई के व्यक्तित्व और चरित्र के प्रभाव को उनका समकालीन समाज ग्रहण न कर सका। जिस राजपरिवार में उनका विवाह हुआ वह मीराबाई को हमेशा अपने कुल का एक कलंक ही मानता रहा और राजस्थान के तत्कालीन इतिहासकारों ने उनके नाम का केवल साधारण-सा उल्लेख ही किया है। चारण और भाटों ने, जो केवल राजाओं और योद्धाओं का ही यशोगान करते रहे, अपने गीतों में मीराबाई का जिक्र तक नहीं किया है।

राजस्थान के दो शक्तिशाली राजपरिवारों से—जन्म से मेड़ता और विवाह के द्वारा मेवाड़—संबंधित होते हुए भी मीराबाई इतिहास की दृष्टि से ओझल ही रहीं, मानों उनके भाग्य में विस्मृति के गर्भ में समा जाना ही लिखा हो।

परंतु मीराबाई आसानी से भुलाई न जा सकीं। उनकी भक्ति, उनकी निष्ठा और दृढ़ता, प्रभुप्रेम में समर्पित उनका जीवन, समय के पथ पर एक अमिट छाप छोड़ गए हैं। साढ़े चार सौ वर्ष बाद भी आज मीराबाई भारतीय संस्कृति और साहित्य के आकाश में एक उज्ज्वल नक्षत्र के समान जगमगा रही हैं और उनका प्रकाश समय के साथ बढ़ता ही जा रहा है। इतिहासकारों द्वारा उपेक्षित होने पर भी वे अपने चित्ताकर्षक गीतों द्वारा जन-साधारण के हृदय में जीवित रहीं, जिनकी प्रेरणा और लोकप्रियता आज तक भी कम नहीं हुई है। उस समय के राजा-महाराजा आज केवल

इतिहास के पृष्ठों में ही रह गए हैं, परंतु समय के साथ मीराबाई की महिमा और लोकप्रियता बढ़ती गई और आज वे अपने समय की सबसे भावपूर्ण और प्रभावशाली कवयित्री मानी जाती हैं।

मीराबाई के जीवन पर अनेक आधुनिक विद्वानों ने खोज की है। परंतु लगभग सभी विद्वान स्वीकार करते हैं कि उनके जीवन की विस्तृत जानकारी नहीं मिलती और उनके जीवन के बारे में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। उनके जीवन के विषय में प्रमुख स्रोत इस प्रकार हैं: 1. मीराबाई के अपने आत्म-कथात्मक पद, 2. मीराबाई के बाद आनेवाले भक्तों और कवियों की रचनाएँ और 3. पिछले डेढ़ सौ वर्षों में विद्वानों द्वारा ऐतिहासिक घटनाओं के आधार पर निकाले गए निष्कर्ष।

1. मीराबाई के पद उनकी आंतरिक भावनाओं की अनायास अभिव्यक्ति हैं, जो उन्होंने अपने जीवन में मुक्त-गीतों के रूप में गाए; परंतु इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि वे उनके जीवन काल में ही लिपिबद्ध कर दिए गए। उनके गीतों के संकलन की कई पांडुलिपियाँ राजस्थान और गुजरात में मिलती हैं किंतु ये संकलन उनकी मृत्यु के पचास से सौ वर्ष बाद किए गए हैं।

2. मीराबाई के बाद के भक्तों और कवियों ने जो कुछ लिखा है वह उनके जीवन से जुड़े हुए चमत्कारों तक ही सीमित है तथा उनमें उनके जीवन का ऐतिहासिक विवरण नहीं है।

3. मीराबाई के विषय में इतिहास के नतीजे बहुत कुछ अनुमान और अंदाज़े की सूक्ष्म कगार पर चल रहे हैं।

इस प्रकार उनकी जो जीवन-गाथा हमें मिलती है वह परंपरा और लोक-कथाओं पर आधारित है जिसे आधुनिक विद्वानों ने इतिहास की चौखट में जड़ने का प्रयास किया है।

मीराबाई का जन्म सन 1498 में कुड़की ग्राम में हुआ। कुछ विद्वानों का मत है कि उनका जन्म बाजोली में हुआ। वे रतन सिंह की पुत्री और मेड़ता-नरेश राव दूदा की पौत्री थीं। मेड़ता उस समय राजस्थान का एक स्वतंत्र और शक्तिशाली राज्य था। उनके पिता, राव दूदा के छोटे बेटों में

से एक थे और इसलिए मेड़ता में वे केवल बारह छोटे शहरों और ग्रामों के सरदार थे। जब वे केवल दो वर्ष की थीं, उनकी माता जी की मृत्यु हो गई, इसलिए राव दूदा उनको मेड़ता ले आए और अपनी देखरेख में उनका पालन-पोषण किया। राव दूदा एक योद्धा होने के साथ ही भक्त-हृदय व्यक्ति भी थे और साधु-महात्मा उनके महल में बराबर आते रहते थे। इस प्रकार मीराबाई बचपन से ही धार्मिक व्यक्तियों के संपर्क में आती रहीं और उनका झुकाव आध्यात्मिकता की ओर हो गया। उस समय के राजवंशों की परंपरा के अनुसार उनको वेद, पुराण आदि धर्मग्रंथों तथा संगीत, कताई और सिलाई की शिक्षा के साथ ही तीर, तलवार आदि शस्त्र-चालन और घुड़सवारी तथा रथ चलाने की भी शिक्षा दी गई। इस प्रकार मीराबाई को घरेलू और पारिवारिक कार्य के साथ ही युद्ध-काल में शस्त्र-संचालन की योग्यता भी प्राप्त हो गई। धर्मग्रंथों के अध्ययन से उन्हें एक उदार दृष्टिकोण प्राप्त हुआ और शस्त्र-चालन की शिक्षा ने उन्हें साहस और दृढ़ निश्चय प्रदान किया। वे मृदुभाषी और सहृदय थीं और जन्म से ही उनकी आवाज़ मीठी और सरस थी। कहा जाता है कि इन गुणों के साथ-साथ वे अत्यंत आकर्षक और रूपवती भी थीं।

मीराबाई के अद्वितीय रूप और गुणों की चर्चा सुनकर मेवाड़-नरेश राणा संग्राम सिंह (राणा साँगा) ने अपने ज्येष्ठ पुत्र युवराज भोजराज के लिए, उनके दादा राव दूदा के सामने विवाह का प्रस्ताव रखा, जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। सगाई धूमधाम से की गई और चित्तौड़ तथा मेड़ता दोनों स्थानों में बड़ी खुशियाँ मनाई गई। परंतु राव दूदा, जिन्होंने मीराबाई को बचपन से पाला था और जो उनके लिए एक प्रकार से पिता और माता दोनों ही थे, विवाह तक जीवित न रह सके। सगाई के कुछ ही महीनों के अंदर उनकी मृत्यु हो गई। मीराबाई अपने पितामह को बहुत चाहती थीं और उनकी मृत्यु उनके जीवन में पहला बड़ा आघात था।

मीराबाई के चाचा राव वीरम का उनके प्रति बहुत स्नेह था। उन्होंने ही मीरा का विवाह सन 1516 में बड़े उत्साह और समारोह के साथ संपन्न किया। इस समय उनकी आयु अठारह वर्ष की थी। विवाह में पूरे मेड़ता

शहर को एक दुलहन की तरह सजाया गया। राणा साँगा बारात लेकर आए जिसमें अनेक नरेश, सामंत और योद्धा भी शामिल थे। मीराबाई जैसी रूपवती और गुण-संपन्न पुत्रवधू को पाकर जो मेवाड़ की भावी महारानी बनने के पूर्णतया योग्य थीं, राणा साँगा बहुत प्रसन्न हुए। विवाह के समय मीराबाई के चाचा राव वीरम देव ने उनको दहेज में वस्त्र व आभूषण आदि के अतिरिक्त कई गाँव भी दिए। राणा साँगा ने नववधू को बड़े स्नेह के साथ अपनाया और उसे बहुमूल्य वस्त्र और आभूषण दिए तथा कई ग्रामों की आय भी उनके नाम कर दी।^{*1}

मीराबाई के पति युवराज भोजराज एक सुंदर प्रभावशाली युवक थे और कई युद्धों में अपनी वीरता के लिए यश प्राप्त कर चुके थे। अनुमान है कि उनका दांपत्य-जीवन सुखी था और ससुराल में उनको समुचित आदर और स्नेह मिला परंतु ये सुख अल्पकालीन ही रहे। विवाह के लगभग दस साल के बाद सन 1525-26 में हुए युद्ध में युवराज भोजराज का देहांत हो गया।[†] मीराबाई के लिए यह एक मार्मिक आघात था। राणा साँगा ने उन्हें मेवाड़ की रानी बनाने के लिए चुना था, परंतु भाग्य को कुछ और ही मंजूर था।

पति की मृत्यु के छः महीने बाद मीराबाई को दो और सदमे पहुँचे। सन 1527 में खानवा की लड़ाई में राणा साँगा की ओर से बाबर से लड़ते हुए उनके पिता का स्वर्गवास हो गया और राणा साँगा, जिन्होंने मीराबाई के जीवन में उनके दादा राव दूदा का स्थान ले लिया था, इस लड़ाई में सख्ता घायल हुए तथा कुछ महीनों के अंदर ही कुछ षड्यंत्रकारी सामंतों ने उन्हें ज़हर देकर मार डाला।

* पु. हरिनारायण शर्मा (जयपुर) की खोज के अनुसार मीराबाई को तीन लाख रुपये प्रति वर्ष की जागीर दी गई। कहते हैं कि मीराबाई जब तक मेवाड़ में रहीं, यही वार्षिक आय प्राप्त करती रहीं तथा उसका अधिकांश भाग वे हीनों, अनाथों तथा अपने यहाँ आनेवाले भक्तों पर खर्च करती रहीं।

† कुछ विद्वानों के अनुसार मीराबाई के पति युवराज भोजराज की मृत्यु विवाह के छः वर्ष बाद 1522 में हुई।

एक के बाद एक आनेवाली इन दुर्घटनाओं से मीराबाई को बहुत आघात पहुँचा। उन्हें संसार की असारता का आभास होने लगा। उनकी स्वाभाविक भक्ति-भावना जाग्रत हो उठी और उनका झुकाव अंतर की ओर होने लगा। उनके कुछ पदों में मानसिक विरक्ति की यह भावना प्रकट होती है:

कोन करे जंजाल, जग में जीवन थोरो॥

जूठी रे काया ने जूठी रे माया, जूठो सब संसार॥²

अपने बचपन और युवावस्था में मीराबाई भगवान कृष्ण की उपासिका थीं। उनकी यह भक्ति और प्रेम गहरा और परिपक्व होने लगा और अब उनके लिए श्रीकृष्ण अथवा गिरधर नागर कोई अवतार न रहकर अविनाशी प्रभु परमपिता परमात्मा से अभिन्न हो गए।

मीराबाई के जीवन में किसी समय एक ऐसी घटना हुई जिसने उनके आध्यात्मिक दृष्टिकोण को बिल्कुल बदल दिया। वे संत रविदास के संपर्क में आईं जो आजीविका के लिए जूते गाँठने का काम करते थे। मीराबाई ने उनसे सुरत-शब्द योग की दीक्षा प्राप्त की। अपने गुरु की कृपा से उनकी जन्मजात भक्ति-भावना को एक नयी दिशा मिली। उनका प्रभुप्रेम एक निजी अनुभव के रूप में साकार हो उठा। बाहरमुखी क्रियाएँ, पूजा-पाठ आदि जो बचपन से उनके जीवन के अभिन्न अंग थे, धीरे-धीरे उनके लिए महत्त्वहीन होने लगे।

मीराबाई के गुरु कौन थे? इस विषय में विद्वानों में मतभेद हैं। नाभादास ने अपनी रचना भक्तमाल में संत रविदास को रामानन्द जी (1299-1410)^{*} का शिष्य बताया है। परंतु भक्तमाल में केवल एक पद है जिसमें रामानन्द जी के बारह शिष्यों के नाम दिए गए हैं जिनमें रविदास जी का नाम भी है। इस पद के आधार पर कुछ विद्वानों ने रविदास जी का समय चौदहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से पंद्रहवीं शताब्दी के मध्य तक

* रामानन्द जी के जीवन काल के विषय में विद्वानों में काफ़ी मतभेद हैं। विभिन्न विद्वानों ने उनके समय के 1328-1448, 1366-1467, 1299-1410 आदि अलग-अलग वर्ष बताए हैं।

माना है और इसी आधार पर वे रविदास जी को मीराबाई के गुरु नहीं मानते। परंतु उसी पद में नाभादास ने रामानन्द जी के कुछ अन्य शिष्यों के नाम दिए हैं जो आधुनिक विद्वानों के अनुसार उनके समकालीन नहीं थे। संत-परंपरा के अनुसार रविदास अथवा रैदास जी, कबीर साहिब (1398-1518) के शिष्य थे और उन्होंने 118 वर्ष की आयु पाई। कुछ परंपराओं के अनुसार रविदास जी का जीवन काल सन 1414 से 1532 तक था, जब कि कुछ अन्य अनुश्रुतियों के अनुसार उनका समय सन 1434 से 1552 तक था।* गुरु रविदास के जीवन पर विद्वान अब भी खोज कर रहे हैं। फिर भी यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि वे मीराबाई के जीवन के प्रथम 34 अथवा 42 वर्षों तक उनके समकालीन थे।

कुछ लोगों का यह कथन सही नहीं लगता कि मीराबाई के कोई गुरु नहीं थे। उन्होंने अपने कई पदों में परमात्मा की प्राप्ति के लिए गुरु की आवश्यकता पर जोर दिया है। उनके अनुसार संत अथवा सतगुरु, मुक्ति-द्वार के द्वारपाल होते हैं और इस द्वार को खोलने की चाबी उन्हीं के हाथ में है।† प्रभुप्रेम की कुंजी द्वारा वे ताला खोलकर आत्मा को सदा के लिए मुक्त कर देते हैं।⁵ मीराबाई कहती हैं:

* हाल ही में कुछ विद्वान इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि रविदास जी का जन्म-स्थान सीर गोबरधनपुर नामक ग्राम है जो बनारस से लगा हुआ है। 1971 में गुरु रविदास का स्मारक मंदिर बनाया गया जिसका उद्घाटन बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के उपकुलपति ने किया। यहाँ प्राप्त एक प्राचीन हस्तलिखित पांडुलिपि में रविदास जी का समय 1414 से 1540 दिया गया है।

† अन्य संतों ने भी कहा है कि गुरु के हाथ में ही मुक्ति-द्वार की कुंजी है। आदि ग्रन्थ में गुरु साहिब कहते हैं कि अंतर में जाने की कुंजी सतगुरु के हाथ में है, किसी और से वह द्वार खुल नहीं सकता। ऐसा गुरु श्रेष्ठ भाग्य हो तो मिलता है। ... जिस (प्रभु) का यह घर है उसने इस पर ताला लगाकर कुंजी गुरु के सुपुर्द कर दी है। मनुष्य चाहे कितने ही उपाय करे, सतगुरु की शरण लिए बिना प्रभु को प्राप्त नहीं कर सकता:

सतगुरु हथ कुंजी होरत दर खुलै नाही गुर पूरै भाग मिलावणि॥³

जिस का ग्रिह तिन दीआ ताला कुंजी गुर सउपाई॥

अनिक उपाव करे नही पावै बिन सतगुर सरणाई॥⁴

हरि बिना रह्यो न जाय, गुरां बिना तरियो न जाय।⁶

बिना प्रभु से मिले मैं जीवित नहीं रह सकती; परंतु बिना सतगुरु के वह प्राप्त नहीं हो सकता।

मनुष्य-जन्म को परमात्मा से प्रेम करने और उसे प्राप्त करने का अनमोल अवसर बताते हुए वे कहती हैं कि प्रभुभक्ति की सही रीति केवल उसी व्यक्ति से प्राप्त हो सकती है जो स्वयं भक्ति की पूर्णता को प्राप्त कर चुका हो। ऐसा पूर्ण पुरुष अथवा गुरु ही प्रभु-प्राप्ति के मार्ग का भेद औरों को भी प्रदान कर सकता है। केवल वही उस अगम और अलख धाम का विवरण दे सकता है।⁷

मीराबाई ने कुछ पदों में अपने गुरु रविदास का उल्लेख किया है। अपने पिता और पति के परिवारों के उज्ज्वल नाम को कलंकित करने के आरोप का उत्तर देते हुए वे कहती हैं कि न तो मैं अपने पीहर की हूँ, न ही ससुराल की। मुझे तो संत रविदास के रूप में गुरु प्राप्त हो गए हैं और उनके द्वारा प्रभु से मिलाप हो गया है:

नहिं मैं पीहर सासरे, नहिं पियाजी री साथ।

मीराँ ने गोविन्द मिल्या जी, गुरु मिलिया रैदास॥⁸

मुझे रविदास जी जैसे संत, गुरु के रूप में मिल गए हैं, मैं उनके दिए हुए नाम को कभी नहीं छोड़ूँगी 'गुरु मिल्या म्हाने रैदास नाम नहीं छोड़ूँ'।⁹

केवल संत रविदास की कृपा द्वारा ही मीराबाई को अपने आध्यात्मिक ध्येय की प्राप्ति हो सकी। वे कहती हैं कि मैं प्रभु के धाम का पता खोजती हुई भटकती रही, परंतु कोई उसका भेद न दे सका। जब अपने सतगुरु संत रविदास से मेरा मिलाप हुआ तो उन्होंने मेरी सुरत अथवा आत्मा को प्रभु की पहचान या निशानी प्रदान की, तब मेरी आत्मा रूहानी मंडलों में जाकर अपने प्रियतम से मिल सकी और मेरी व्यथा की अग्नि बुझ सकी:

खोजत फिरुं भेद वा घर को, कोई न करत बखानी॥
रैदास सन्त मिले मोहि सतगुरु, दीन्हीं सुरत सहदानी॥
मैं मिली जाय पाय पिय अपना, तब मोरी पीर बुझानी॥¹⁰

इसी प्रकार एक अन्य पद में वे कहती हैं कि परमात्मा की दया से ही मेरा मिलाप मेरे पूर्ण गुरु रैदास से हुआ। और जब मेरे सतगुरु ने आकर मुझे रूहानी मार्ग का भेद प्रदान किया तो मेरी ज्योति उस परम ज्योति से मिलकर एक हो गई:

गुरु रैदास मिले मोहिं पूरे, धुर से कलम भिड़ी।
सतगुरु सैन दई जब आ के, जोत में जोत रली॥¹¹

मनुष्य-जन्म के असली उद्देश्य-प्रभु-प्राप्ति की पूर्ति के लिए कटिबद्ध मीराबाई ने भक्ति के मार्ग को पूरी लगन के साथ अपना लिया। अपने अभ्यास के द्वारा उन्हें आंतरिक अनुभव प्राप्त हुए जिनके फलस्वरूप उनका विश्वास दृढ़ हो गया और उनका मन, उनकी आत्मा प्रेम के कभी न छूटनेवाले रंग में रँग गए। प्रेम की चिनगारी अब एक उज्ज्वल लौ के रूप में प्रज्वलित हो गई। उनके ही शब्दों में जब शुरू में वे प्रभु के प्रेम के मार्ग पर चलीं तो किसी ने उन्हें न रोका, अब उनका प्रेम विकसित हो उठा है जैसे बट या बरगद का छोटा-सा बीज समय पाकर विशाल वृक्ष का रूप ले लेता है:

गोविन्द सँ प्रीत करत, तबहि क्यों न हट की।
अब तो बात फैल परी, जैसे बीज बट की॥¹²

भक्ति और प्रेम के इस विकास के साथ ही मीराबाई के जीवन में परीक्षा और विपत्तियों का दौर भी शुरू हो गया। परंपरा और परिपाटियों के विरुद्ध उनकी प्रभुभक्ति, उनका धार्मिक मान्यताओं और रूढ़ियों के विपरीत आचरण, साधु-संतों के साथ निरंतर उठना-बैठना और अपने गुरु संत रविदास की भक्ति और वंदना ने पंडितों, पुरोहितों और चित्तौड़

राजदरबार के कट्टरपंथियों के कोप को भड़का दिया। उन्होंने उनकी आलोचना और निंदा करनी शुरू कर दी। मेवाड़ के राणा और उनका राजपरिवार जो सदा से परंपराओं का भक्त, जाति-भेद का पोषक और ऊँची जातियों की उच्चता का समर्थक था, जो अपनी जटिल रूढ़ियों के साथ इतना बँधा हुआ था कि अपने राजवंश की महिलाओं का अन्य लोगों के साथ मिलना-जुलना पसंद न करता था और जो अपनी प्रतिष्ठा के गर्व * में डूबा रहता था, वह इस बात को सहन न कर सका कि राजपरिवार की एक बहू साधारण लोगों से मिले-जुले और एक ऐसे महात्मा को गुरु माने जो व्यवसाय से जूते गाँठने का कार्य करते थे। उच्च वर्ण के कट्टरपंथी लोग, राजपरिवार और सामंत आदि मीराबाई की कटु आलोचना करने लगे। उनके आक्रोश और निंदापूर्ण वचनों का जब उन पर कोई असर न हुआ तो उन्होंने उनके विरुद्ध षड्यंत्र रचने और राणा के कान भरने शुरू कर दिए।

राणा साँगा, जो मीराबाई को समझ सकते थे, जो उनको स्नेह और सहानुभूति दे सकते थे, 1527 में स्वर्ग सिधार चुके थे। मेवाड़ के नए शासक राणा रतन सिंह जो मीराबाई के देवर थे, कमज़ोर और अस्थिर स्वभाव के थे। उनमें अपने पिता राणा साँगा की वीरता, बुद्धिमत्ता और सहिष्णुता का कोई अंश न था। जन-भावना तथा पुरोहितों, पंडितों और दरबारियों के प्रभाव में आकर वे मीराबाई को मेवाड़ के राजघराने का कलंक मानने लगे। भोजराज जी की बहन और उनकी ननद ऊदाबाई ने उनको सुधारने का बीड़ा उठाया। उनके कुछ गीत राणा और ऊदाबाई के कटु व्यवहार और मीराबाई की दृढ़ता पर प्रकाश डालते हैं। यह कल्पना करना कठिन नहीं होगा कि उनको अपने दैनिक जीवन में ऊदाबाई और राणा के हाथों कितनी यातनाएँ सहनी पड़ीं। ऊदाबाई के हृदय में उनके प्रति द्वेष और घृणा के भाव थे और उसने मीराबाई को बदनाम करने, उन्हें कष्ट और धमकियाँ देने में कोई कसर न छोड़ी।

* मेवाड़ के राणाओं की यह प्रतिष्ठा संबंधी परंपरा इतनी जटिल थी कि वे किसी साधारण नागरिक से सीधे बात न करते थे। जब भी कोई बात करनी होती तो सारा वार्तालाप किसी मध्यस्थ व्यक्ति की मारफ़्त किया जाता था।

कहा जाता है कि एक रात ऊदाबाई राणा के पास गई और बोली कि मीराबाई के कमरे में कोई पुरुष है और उसने स्वयं उनको प्रेमपूर्ण शब्दों में उसके साथ बातें करते सुना है। वास्तव में मीराबाई परमात्मा की याद में खोई हुई विरह-विह्वल हो पुकार रही थीं। यह शिकायत सुनते ही राणा की क्रोधाग्नि भड़क उठी। उन्होंने तलवार निकाली और उन्हें मार डालने का निश्चय करके उनके महल की ओर चल पड़े। जब राणा ने उनके कक्ष में प्रवेश किया तब वहाँ कोई पुरुष न था। अपनी भावनाओं में खोई हुई मीराबाई अकेली बेसुध-सी बैठी थीं, उनके नेत्रों से अश्रु बह रहे थे और उनके शरीर से प्रकाश की धाराएँ निकल रही थीं जिनसे सारा कक्ष जगमगा रहा था। जैसे ही राणा ने उन्हें मारने के लिए तलवार उठाई, एक तेज़ प्रकाश ने उन्हें चकाचौंध कर दिया। इस अनुभव से वह एकदम घबरा उठे और तेज़ी से कमरे से बाहर निकल आए।*

ऊदाबाई, जो राणा के इंतज़ार में बाहर खड़ी थी, उनकी घबराई हुई हालत देखकर आश्चर्यचकित रह गई। अंदर क्या हुआ? इसका कुछ भी अनुमान न लगा पाने के कारण वह स्वयं मीराबाई के कमरे में गई और वहाँ का दृश्य देखकर स्तब्ध रह गई। वे अभी भी उसी प्रकार बैठी थीं, उन्हें अपने तन-बदन की सुधि न थी, उनका मुख प्रकाश से दमक रहा था, जिसकी ज्योति से पूरे कमरे में उजाला छाया हुआ था। ऊदा मंत्रमुग्ध-सी खड़ी रही। मीराबाई की महानता का उसे आभास होने लगा और उसके विरुद्ध षड्यंत्र रचने के लिए उसे बहुत दुःख और खेद हुआ, उसकी आँखों से पश्चात्ताप के अश्रु बह निकले और वह उनके चरणों में गिर पड़ी। कोमल-हृदय मीराबाई ने ऊदाबाई को स्नेह के साथ उठाया और सात्वना प्रदान की।

कहा जाता है कि राणा ने दो और स्त्रियों को मीराबाई को 'सुधारने' के लिए भेजा, पर दोनों ही ऊदा की तरह उनकी प्रशंसक बन गईं।

* इस वार्ता के एक और विवरण के अनुसार राणा ने कमरे में एक के स्थान पर अनेक मीराओं को कक्ष के कोने-कोने में खड़े हुए देखा।

मीराबाई अब प्रभुप्रेम में पूर्णतया डूब चुकी थीं। उनका मन प्रभु के दर्शन और उसके मिलाप की उत्कंठा में निरंतर लीन रहने लगा। वे 'सदा टकटकी लगाए प्रभु के आने के इंतज़ार में पथ निहारती रहतीं', उनकी 'रातें निद्रारहित बीततीं', उन्हें 'अन्न नहीं भाता था', वे इस प्रकार तड़पती थीं 'जैसे जल के बिना मीन' तड़पती हैं। अपने प्रियतम से मिलने की उनकी व्याकुलता इतनी तीव्र थी कि जब किसी ज्योतिषी ने उनका भविष्य बताना चाहा तो उन्होंने सिर्फ़ एक ही प्रश्न, जो उनके मन में था, पूछा, "ऐ भले ज्योतिषी, मुझे बताओ, मैं अपने प्रिय प्रभु से मिलाप कब प्राप्त करूँगी?"

यें कहो मने जोशी राम मिलण कद होसी॥¹³

ज्योतिषी के पास इस प्रश्न का कोई उत्तर न था।

मीराबाई के ऐसे कई पद हैं जिनसे पता चलता है कि राणा ने उन्हें अपने भक्तिमार्ग से हटाने के लिए अनेक प्रयत्न किए। परंतु राणा के कठोर वचनों और धमकियों का उत्तर वे सदा कोमलता और गंभीरता के साथ देती रहीं। आप एक पद में कहती हैं:

भली बुरी तो मैं नहिं कीन्हीं, राणो क्यूँ है रिसायो।

थाने म्हाने देह दिवी है, ज्याँरो हरिगुण गायो॥¹⁴

"राणा जी, तुम मुझे क्यों मारना चाहते हो? मैंने न कभी तुम्हारा अनिष्ट सोचा और न ही मैंने कोई बुरा कार्य किया है। प्रभु ने अपनी असीम कृपा से तुमको मनुष्य-जन्म दिया है और मुझे भी, ताकि हम उसकी उपासना तथा भक्ति करें। इसलिए मैं उसकी भक्ति और उसी का गुणगान करती हूँ। आप कहती हैं:

राणाँजी हो जाति रो कारण म्हारे को नहीं,

लागो म्हारो हरि भगताँ सँ हेत॥¹⁵

जाति और कुल की भावनाओं से मुझे कुछ लेना-देना नहीं है, मैं तो केवल प्रभु के भक्तों की आराधना करती हूँ। अब आप आगे कहती हैं:

गुरु प्रताप साधां री संगत सहजै ही तिर जास्यौं॥

.....
लोक लाज की काण न मानौं, रामतणा गुण गास्यौं॥
नाँव अमोलिक अमृत पीकै, सिरके साटे लास्यौं॥¹⁶

अपने गुरु के प्रताप और संतों की संगति से मैं सहज ही भवसागर से पार हो जाऊँगी। मैं नाम के अनमोल अमृत का पान करूँगी, जिसे मैंने सिर देकर प्राप्त किया है।*

राणा की कठोरता मीराबाई को विचलित न कर सकी और न ही लोकनिंदा उन्हें अपने पथ से डिगा सकी। वह लोकलाज के बंधनों को तोड़ चुकी थीं। अब उनके मन में कोई सांसारिक विचार न थे, क्योंकि परमात्मा का प्रेम उनके मन, हृदय और आत्मा पर पूर्णतया छा गया था।

अपने गुरु के साथ उनका संपर्क अधिक समय के लिए नहीं रह सका। उनका अधिकांश जीवन अपने प्यारे सतगुरु के वियोग में ही बीता। उनके पदों में पाई जानेवाली विरह-भावना और गहरी वेदना का यही कारण है। मीराबाई के अपने गुरु रविदास से मिलाप का विवरण, उनकी दीक्षा और अपने सतगुरु के साथ उनके अल्प, किंतु गहरी आध्यात्मिकता से परिपूर्ण संपर्क के बारे में कोई ऐतिहासिक जानकारी प्राप्त नहीं होती। मौखिक परंपरा से जो भी वृत्तांत मिलते हैं, वे अत्यंत प्रेरक और मर्मस्पर्शी हैं।

अपनी चित्तौड़-यात्रा के समय रविदास जी अपनी जाति के लोगों के लिए निर्धारित अलग बस्ती में ठहरा करते थे। ऊँची जाति के लोग न तो इन बस्तियों में जाते थे और न ही यहाँ की झोपड़ियों के अंदर पैर रखते थे। कहा जाता है कि मीराबाई एक साधारण दासी के कपड़े पहनकर अपने महल से चुपचाप अपने गुरु के दर्शन के लिए जाती थीं। परंतु गुरु रविदास की संगति के द्वारा उन्हें कुछ ही समय में बोध हो गया कि संतों का मार्ग चोरी और कायरता का मार्ग नहीं है। अतएव परिणाम की कोई चिंता न करते

* कबीर साहिब भी कहते हैं, 'कबीर सौदा नाम का, सिर बिन कबहुँ न होय॥'¹⁷

हुए वे खुले रूप में बेझिझक अपने गुरु के पास जाने लगीं। वे जाति-भेद और ऊँच-नीच की चिंता न करते हुए अपने गुरु के अन्य साधारण शिष्यों के बीच बैठतीं, गुरु रविदास के चरणों में मस्तक झुकातीं और उनके हाथ से प्रसाद ग्रहण करतीं। जब तक गुरु रविदास चित्तौड़ में रहे, वे प्रतिदिन उनके दर्शन के लिए जाती रहीं। इस बात की पुष्टि मीराबाई के एक पद से होती है जिसमें ऊदाबाई उन पर आक्षेप लगाती है कि वे हर सुबह उठकर शहर से बाहर साधारण बस्ती में जाती हैं। ऊदाबाई कहती है, "हे मीरा, अब कहना मान लो। तुम्हें तुम्हारी सखियाँ तक समझा रही हैं। राणा, रानियाँ और पूरा परिवार ही तुम्हें मना कर रहा है। सभी तुम्हें मना करते हैं फिर भी तुम सुनती नहीं। ...साध-संगति में बैठ-बैठकर तुमने अपनी लाज और प्रतिष्ठा खो दी है। तुम नित्य प्रति सवेरे उठकर शहर से बाहर साधारण बस्ती में जाती हो, इस प्रकार तुमने अपने कुल पर कालिख लगाई है।"

अब मीराँ मान लीज्यो म्हारी, हो जी, थाने सखियाँ बरजे सारी॥
राजा बरजै, राणी बरजै, बरजै सब परिवारी॥

.....
साधन के ढिंग बैठ बैठ, लाज गमाई सारी॥

नित प्रति उठि नीच घर जावो, कुल कूँ लगावो गारी॥¹⁸

मीराबाई उत्तर देते हुए कहती हैं:

तार्यो पीहर, सासरो तार्यो, माय मोसाली तारी॥

मीराँ ने सतगुरुजी मिलिया, चरण कमल बलिहारी॥¹⁹

परंतु समझाने-बुझाने के बाद भी जब मीराबाई ने रविदास जी के दर्शन के लिए उनके यहाँ जाना बंद न किया तो राणा ने उनके महल पर सख्त पहरा बिठा दिया ताकि वे गुरु-दर्शन के लिए न जा सकें। इस कठोर नियंत्रण का संकेत उनके कुछ पदों में मिलता है: 'पहरो भी राख्यो चोकी बिठाइयो, ताला दियो जुड़ाय॥'²⁰ पर उनको अब कोई रोक नहीं सकता था।

कहा जाता है कि वे अपनी ओढ़नियों की रस्सी बनाकर, उनके सहारे महल की ऊँची दीवार से उतरकर रविदास जी के पास जाने लगीं।*

अपने गुरु के प्रति गहरी भक्ति और प्रीति के फलस्वरूप मीराबाई को अंतर में आत्मिक अनुभव होने लगे। इनका कुछ बोध वे अपने पदों में देती हैं और स्पष्ट रूप से कहती हैं कि यह प्रसाद उन्हें अपने गुरु की कृपा द्वारा प्राप्त हुआ है, “हे प्रभु, मेरे हृदय-मंदिर में पधारो, मैं आपकी राह देख रही हूँ। धरती और आकाश के बीच प्रभात के उज्ज्वल रंग मूसलाधार वर्षा की तरह फैल रहे हैं। अपने गुरु के प्रताप से मैं प्रभु के नाम का सुमिरन कर रही हूँ। अंतर में दोनों मंडलों के बीच नाम के कमल में मैं सुखपूर्वक स्थित हूँ। अपने गुरु की कृपा से मुझे बंकनाल के पार मुरली की मधुर धुन सुनाई देने लगी है। मेरी सुहागिन आत्मा इस शरीररूपी शहर में आनंद-मग्न है। अपने दयालु गुरु से मिलने पर मेरा जन्म-मरण का भय नष्ट हो गया है। दायें (गंगा) और बायें (जमुना) के बीच की गली में अब मेरी आत्मा निवास करने लगी है। मीराबाई कहती हैं, जब से मुझे सब प्रकार से समर्थ गुरु मिले हैं तब से मुझ में पूर्ण विश्वास और प्रतीति आ गई है:

म्हारे मिंदरी ए पधारौ जोऊँ थांरी बाट॥ टेक
धरण गिगन विच झोरी लागी उगैत परभात॥
रसनाँ मेरी राम रटत है सतगुरु जी रै परताप॥
दोई चोकी में सहजै छेकी नाम कवल कै घाट॥
बंक-नाल पर मुरली बाजै सतगुरु मांर्या थाट॥
काया-नगर में रास रच्यो, है सुरत सुहागण नार॥
जनम-जनम का टोटा भाग्या गुरु मिल्या दातार॥
इंगला पिंगला सुखमण नारी सहैज रच्यो घरवास॥
मीरां ने गुरु गरवा मिलिया जब पायो बिसवास॥²¹

* अन्य वृत्तांत के अनुसार मीराबाई चित्तौड़ के किले की ऊँची दीवार से उतरकर बहुत सवरे रविदास जी के दर्शन के लिए जाती थीं। रविदास जी किले से दूर अपनी जाति के लोगों की बस्ती में निवास करते थे।

कई विद्वानों का विचार है कि परमात्मा ही मीराबाई के गुरु थे और कोई देहधारी गुरु उन्होंने धारण ही नहीं किया। इस नतीजे पर वे इसलिए पहुँचे कि उन्होंने सभी संतों की तरह गुरु और परमात्मा को एकरूप अथवा एक-दूसरे से अभिन्न माना है। यह संतों की शिक्षा का मूल आधार है कि सतगुरु, परमात्मा का साक्षात्कार करके तथा उससे अभिन्न होकर मनुष्य के रूप में परमात्मा ही होते हैं।* मीराबाई अपने गुरु के वियोग में तीव्र वेदना तथा गहरी उत्कंठा का वर्णन करते हुए परमात्मा को भी प्रेम की उसी भावना से संबोधित करती हैं। उनके बहुत-से पदों में गुरु और परमात्मा अभिन्न हो गए हैं और अपने कई गीतों में वे कहती हैं कि गुरु और परमात्मा एक ही हैं, “मुझे सतगुरु मिल गए और उनके द्वारा मुझे सत्य का बोध हो गया। मैंने अनादि, अनंत, साहिब को पा लिया है। यदि मैं उन्हें न पाती तो संसार में जन्म-मरण के क्रम में भटकती रहती।”

सतगुरु मिलिया सुंज पिछाणी, ऐसा ब्रह्म मैं पाती॥

साहब पाया आदि अनादि, नातर भव में जाती।²²

मेवाड़ के रूढ़िवादी कट्टरपंथियों का द्वेषपूर्ण विरोध बढ़ता ही गया। मीराबाई के सतगुरु-प्रेम ने उनकी क्रोधाग्नि में घी का काम किया,

* कबीर साहिब कहते हैं, ‘गुरु साहिब तो एक हैं’, तथा ‘गुरु साहिब करि जानिये...।’
(कबीर साखी-संग्रह, पृ. 3,1)

दादू साहिब अपनी वाणी में गुरु को गोबिंद कहते हैं:

इक लख चन्दा आणि घर, सूरज कोटि मिलाइ।

दादू गुरु गोबिंद बिन, तौ भी तिमर न जाइ॥

(दादू दयाल की बानी, भाग 1, पृ. 6)

गुरु रामदास जी फरमाते हैं कि शरीररूपी समुद्र को मैंने मथकर देखा और यह अनुपम ज्ञान प्राप्त किया कि गुरु परमात्मा है और परमात्मा ही गुरु है; दोनों में कोई भेद नहीं है:

समुंद विरोल सरीर हम देखिआ इक वसत अनूप दिखाई॥

गुरु गोविंद गोविंद गुरु है नानक भेद न भाई॥ (आदि ग्रन्थ, पृ. 442)

(शेष अगले पृष्ठ पर)

परंतु सभी प्रकार के विरोध और शत्रुतापूर्ण व्यवहार पर भी वे शांत और निर्विकार रहीं। लोग कहने लगे कि वे पथ-भ्रष्ट हो गई हैं, वे अपने कुल के लिए एक कलंक हैं, वे भले-बुरे की समझ खो बैठी हैं और यहाँ तक कि वे पागल हो गई हैं। मीराबाई अपने एक गुजराती पद में उत्तर देती हैं, “पागल? हाँ, मैं पागल हूँ; परंतु अपने इस पागलपन के द्वारा मैंने मनुष्य-जन्म के असली ध्येय को प्राप्त कर लिया है।” वे आगे कहती हैं, “प्रभुप्रेम का जो रस देवी-देवताओं को भी दुर्लभ है, उस रस का आनंद यह पागल निरंतर लेती है। ... हे लोगो, तुम मुझे ‘पागल पागल’ क्या कहते हो, मुझे जैसे पागलों के सभी कार्य प्रभु स्वयं संपूर्ण करते हैं।”²³

राणा रतन सिंह का राज्य काल सन 1531 में एकाएक समाप्त हो गया, जब उसने अपने मामा सूरजमल की हत्या करने के प्रयास में अपने ही प्राण गँवा दिए। परंतु मीराबाई के प्रति वैर-भाव रखनेवाले राणा रतन सिंह की मृत्यु के साथ उनकी विपत्तियों का अंत न हुआ। मेवाड़ का नया शासक राणा विक्रमादित्य अदूरदर्शी, हठी और चरित्रहीन था। अपने दरबारियों और पंडितों के बहकावे में आकर वह शीघ्र ही उनके प्रति शत्रुता की भावना रखने लगा। पुरोहितों और सामंतों से विचार-विमर्श करके उसने मीराबाई को विष देकर मार डालने का निर्णय किया।

दयाराम नामक एक व्यक्ति को सोने के कटोरे में विष ले जाकर उनको चरणामृत* के नाम से देने के लिए भेजा गया। ऊदाबाई को इस

(पिछले पृष्ठ के फुट नोट का शेष)

गुरु अर्जुन देव जी का कथन है कि गुरु और परमेश्वर को एक ही जानो:

गुरु परमेश्वर एको जाण॥ जो तिस भावै सो परवाण॥ (आदि ग्रन्थ, पृ. 864)

महात्मा चरनदास जी कहते हैं कि यह निश्चित रूप से जान लो कि हरि और गुरु एक ही हैं:

हरि गुरु एकहि जान यह निश्चय लाइये। (चरनदास जी की बानी, भाग 1, पृ. 7)

* संत अथवा गुरु द्वारा प्रसाद रूप में दिया गया जल अथवा पेय पदार्थ चरणामृत कहलाता था, परंतु धीरे-धीरे इष्ट की मूर्ति के धोए हुए पानी को चरणामृत कहा जाने लगा।

षड्यंत्र का पता चल गया और उसने तुरंत जाकर मीराबाई को चेतावनी दी; परंतु उन्होंने कभी चरणामृत लेने से इनकार नहीं किया था। अतएव यह जानते हुए भी कि प्याले में विष है, उन्होंने सहर्ष पी लिया। कुछ समय बाद राणा ने अपने आदमियों को भेजा कि उनके शरीर को उठाकर वन में डाल आएँ, परंतु मीराबाई पर विष का कोई असर नहीं हुआ था। जब राणा के आदमी पहुँचे तो उन्होंने उनको आत्म-विस्मृत हो भजन गाते हुए पाया। उनका मुख दिव्य-प्रेम की अलौकिक ज्योति में चमक रहा था। मीराबाई के अपने शब्दों में वे इस परीक्षा से ऐसे निकलीं जैसे सोना तपने के बाद निर्मल और शुद्ध निकलता है:

जैसे कंचन दहत अगिन में, निकसत बाराबांणी॥*²⁴

वह कौन-सी बात थी जिसके लिए राणा ने मीराबाई के प्राण लेने चाहे? इतिहास, परंपरा तथा जनश्रुति तक इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं देती। फिर भी कोई विशेष कारण अवश्य होगा जिसकी वजह से उनकी हत्या का प्रयत्न किया गया। संभव है, संत रविदास उस समय चित्तौड़ अथवा चित्तौड़ के निकट किसी स्थान में होंगे और उनके द्वारा अपने सतगुरु के दर्शन के लिए प्रतिदिन जाने से राजपुरोहित, पंडित, उच्च-जाति के लोग तथा राजपरिवार के सदस्य इतने क्रुद्ध हुए होंगे कि उन्होंने उनकी हत्या की योजना बनाई। अपने एक पद में मीराबाई कहती हैं, “कुछ दुष्ट लोगों ने प्रतिदिन मुझे अपने गुरु के सत्संग में जाते देख लिया। मैं तो खुश हूँ क्योंकि परमात्मा ने अपने न्याय में मुझे सच्चा और दुनिया को झूठा पाया; अब कोई निंदा करे या स्तुति, मैं तो अपनी ही राह चल्नूंगी”:

साध संगत में नित उठ जातां, दुरजन लोकां दीठी॥

मैं म्हांरी गिरधर न्याव नवेरो, और दुनी सब झूठी॥

भावै कोई निंदो भावे कोई बंदो, चलसी चाल अफूठी॥²⁵

* बाराबांणी=शुद्ध कुंदन।

मीराबाई ने अपने कई पदों में इस घटना का उल्लेख किया है और विष को अमृत बना देने के लिए परमात्मा का आभार माना है। उनका सतगुरु-प्रेम अब और तीव्र हो उठा और वे अपना पूरा दिन भक्तों और साध-संतों की संगति में बिताने लगीं। एक प्रेमी-भक्त के रूप में उनकी ख्याति फैलने लगी और लोग, जिनमें ज्यादातर साधारण गरीब प्रजा थी, उनके दर्शन और उनके भजन सुनने के लिए आने लगे।

कहा जाता है कि मुगल शहंशाह अकबर भेष बदलकर अपने दरबार के प्रसिद्ध गायक तानसेन के साथ मीराबाई को देखने और उनके भक्तिपूर्ण गीतों को सुनने के लिए चित्तौड़ आए। उनके अद्वितीय व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उन्होंने आदरपूर्वक सिर झुकाया और एक मूल्यवान हार भेंट में देना चाहा। परंतु मीराबाई ने उसे नम्रतापूर्वक अस्वीकार कर दिया। ऐतिहासिक दृष्टि से यह घटना उस समय की नहीं हो सकती जब मीराबाई चित्तौड़ में थीं, क्योंकि अकबर सन 1556 में गद्दी पर बैठे और उस समय तक वे चित्तौड़ छोड़ चुकी थीं। हरमन गैटे (Hermann Goetz) मीराबाई की जीवनी में लिखते हैं कि अकबर उनके पास चित्तौड़ में नहीं बल्कि आमेर में गए जहाँ उन्होंने अपने जीवन के उत्तरार्ध के कुछ दिन बिताए थे।

युवा अकबर के मन पर मीराबाई के व्यक्तित्व का गहरा प्रभाव पड़ा और धार्मिक संकीर्णता के स्थान पर उनके मन में उदार भावनाएँ उत्पन्न होने लगीं जिनके फलस्वरूप आगे चलकर उन्होंने एक विश्वव्यापी धर्म की स्थापना करने का प्रयास किया।

मीराबाई की लोकप्रियता और ख्याति से राणा विक्रम का रोष और बढ़ गया। उसने तथा उसके सलाहकारों ने उनके प्राणांत का एक और प्रयत्न किया। इस बार उन्होंने एक अत्यंत विषैले नाग को आभूषणों के डिब्बे में रखकर भेजा और कहलाया कि यह राणा की ओर से एक बहुमूल्य हार की भेंट है। इस घटना का मीराबाई ने अपने कुछ पदों में इस प्रकार उल्लेख किया है:

पेट्याँ बासक भेजियो जी, यो छै मोतीडाँ रो हार।
नाग गले में पहिरियो, म्हाँरँ महल भयो उजियार॥²⁶

साँप टिपारो मोकल्यो, दो मीराँ के हाथ।
खोल टिपारो देखिया, हो गया नोसरहार॥²⁷

विष देने की वार्ता के समान ही सर्प की घटना का भी उल्लेख केवल मीराबाई ने ही नहीं बल्कि बाद के कई भक्तों और कवियों ने भी किया है। इन घटनाओं की सच्चाई पर यह कहकर आपत्ति उठाई जा सकती है कि संभव है कि किसी नेक व्यक्ति ने विष के स्थान पर कोई हानि-रहित पेय और सर्प के स्थान पर असली हार रख दिया हो।²⁸ परंतु यदि ऐसा हुआ भी हो तो भी मीराबाई की दृढ़ता, उनके विश्वास और प्रेम पर संदेह नहीं किया जा सकता क्योंकि उन्होंने तो विष समझकर ही प्याला पिया और डिब्बे में सर्प मानकर ही उसे खोला।

कुछ विद्वानों का विचार है कि राजनीतिक षड्यंत्रों की वजह से मीराबाई पर अत्याचार किए गए, पर ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता कि उन्होंने कभी प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से चित्तौड़ की राजनीति में हस्तक्षेप किया हो। वे परमात्मा के प्रेम में इतनी डूबी हुई थीं कि उन्हें समाज और राजनीति में कोई रुचि न थी। अपनी स्पष्ट, निर्भीक और परंपरा विरोधी भक्ति के लिए; बाहरमुखी क्रियाओं, पूजा-पाठ, कर्मकांड आदि के खंडन के लिए और जाति-पाँति तथा ऊँच-नीच की भावनाओं की उपेक्षा करने के लिए संतों और भक्तों को सदैव सताया और कष्ट दिया गया है। यद्यपि मीराबाई को न तो सूली पर चढ़ाया गया, न उनका सिर काटा गया; फिर भी जिन कष्टों का उन्हें सामना करना पड़ा वे कुछ कम न थे। उनका पूरा जीवन ही दुःख और दर्द की एक गाथा है। समाज के द्वारा तिरस्कृत, राज्य के लोगों द्वारा निंदित, अपने ही परिवार के द्वारा उत्पीड़ित, उन्हें निरंतर कष्ट और यातनाओं का सामना करना पड़ा। परंतु उन्होंने बगैर किसी वैर-भाव या शिकायत के साहस और धीरज के साथ, संतों-सी सहिष्णुता के साथ, सबकुछ शांतिपूर्वक सहा।

मीराबाई ने कभी यातना देनेवालों को नहीं कोसा। उनका कोई भी दुर्व्यवहार उन्हें बदला लेने के लिए उत्तेजित न कर सका। वे इतनी कोमल हृदय और दयालु थीं कि उनके मुख से कटु वचन न निकल पाते थे और अपने सतानेवालों के प्रति भी उनके हृदय में केवल सहानुभूति के भाव थे। वे राणा से कहती हैं, “मैं अपने पीहर और ससुराल के परिजनों का अपने साथ उद्धार कर देती, परंतु उन्होंने “म्हारी नेक न मानी बात॥”²⁹

एक प्राचीन ग्रंथ³⁰ में दी गई घटना उनकी नम्रता और सहिष्णुता पर प्रकाश डालती है। एक पुरोहित, जिनका अपनी धार्मिकता के लिए बड़ा नाम था, एक बार चित्तौड़ में मीराबाई के मेहमान होकर ठहरे। एक दिन वे उनके एक परंपरा-विरुद्ध भक्ति-गीत को सुनकर बहुत अप्रसन्न हुए। गीत को अपना और अपनी मान्यताओं का अपमान मानकर वे भक्तों के समुदाय में से उठ खड़े हुए और बड़े रोषपूर्ण स्वर में ज़ोर-ज़ोर से मीराबाई को अपशब्द कहने लगे और यह कहते हुए जाने लगे कि वे अब उनका आतिथ्य स्वीकार नहीं करेंगे। मीराबाई को दुःख हुआ कि कोई उनसे इस प्रकार अप्रसन्न होकर चला जाए। उन्होंने बड़ी शांति और नम्रता के साथ पुरोहित से निवेदन किया कि वे एकाएक इस प्रकार न जाएँ और जितने दिन रहना चाहें, रहें, परंतु कट्टर पुरोहित अपने निर्णय पर जमे रहे। मीराबाई हमेशा अपने यहाँ आनेवाले भक्तों और धार्मिक पुरुषों का आदर करती थीं। उन्होंने पुरोहित के लिए विदा में वस्त्र, धन और खाने का सामान भेजा। वे अब इस अवस्था पर पहुँच चुकी थीं जिसमें स्तुति और निंदा, यश और अपयश उनके लिए समान थे। निर्विकार और अनासक्त होने के साथ ही उनके उदार हृदय में सबके प्रति प्रेम की भावना थी। अपने एक पद में वे कहती हैं कि भक्त को एक वृक्ष की तरह हमेशा शांत, विशाल-हृदय और सहिष्णु होना चाहिए। यदि उसे कोई काटने आता है तो वह उससे वैर भाव नहीं रखता और यदि कोई सींचने आता है तो उससे मोह नहीं करता। अपने ऊपर पत्थर फेंकनेवालों को भी वह मधुर फल ही देता है। आँधी और बरसात के वेग को वह बिना किसी शिकायत के शांत भाव से सहता है:

मना तू तो वृक्षन की लत लेइ रे, थारो काँई* करे डर भव रे॥
काटन वाला सूं बैर नहीं है, नहीं सींचन को सनेह रे।
जो कोई बावे† कंकर पत्थर, उनको भी फल देइ रे॥
पवन चलावे, इन्द्र झकोले, दुख सुख आपहि सहि रे।
सीत गहाम‡ तो शिर पर सहि है, पन्छिन को सुख देइ रे॥³¹

मीराबाई के संपर्क में जो भी आता वह उनके असाधारण व्यक्तित्व, उनके दिव्य प्रेम, उनकी भक्ति और नम्रता से प्रभावित हुए बिना न रह पाता। भक्तों और साधुओं के लिए उनके महल के द्वार हमेशा खुले रहते और उन्हें निस्संकोच भोजन और वस्त्र दिए जाते। परंतु कुछ कट्टरपंथी लोग उनकी उन्मुक्त भक्ति और उसके बढ़ते हुए प्रभाव से जलने लगे।

उनको नीचा दिखाने के लिए उन्होंने एक ब्राह्मण युवक को इस बात पर राज़ी किया कि वह जाकर उनसे कहे कि प्रभु ने युवक को दर्शन दिए हैं और आदेश दिया है कि वह मीराबाई के साथ एक ही सेज पर रात बिताए। उन्होंने युवक की इस धृष्टतापूर्ण बात को निर्विकार भाव से सुना और उसे शाम को आने के लिए कहा।

शाम को रोज़ के समान साधुओं और भक्तों की मंडली उनके आँगन में जमी हुई थी और सब मिलकर भक्ति के गीत गा रहे थे। युवक जब महल के द्वार पर पहुँचा तो द्वारपाल उसे अंदर ले आए और मीराबाई ने उठकर उसका स्वागत किया। परंतु जब युवक ने देखा कि भक्तों की मंडली के बीच में सेज बिछी हुई है तो वह घबरा गया। कुछ साहस बटोरकर उसने आपत्ति उठाई कि वह इतने लोगों के बीच कैसे सो सकता है। मीराबाई ने शांत भाव से उत्तर दिया कि अपने उस प्रभु से जो सब जगह मौजूद है और सबकुछ देख रहा है, वे कुछ भी नहीं छिपा सकतीं और न ही उसके भक्तों से जो एक तरह से उन्हीं का परिवार है।[§]

* काँई=क्या। † बावे=फेंके। ‡ गहाम=गर्मी, धूप।

§ यह वृत्तांत प्रियादास कृत भक्तमाल की टीका तथा राघवदास दादूपंथी की भक्तमाल में आता है। अनेक आधुनिक विद्वानों ने भी इसका उल्लेख किया है।

उनके उत्तर की निष्कपट सरलता ने उस युवक के हृदय को हिला दिया। खेद और पश्चात्ताप से अभिभूत वह अश्रुपूरित नेत्रों सहित उनके चरणों में गिर पड़ा। मीराबाई ने उसे क्षमा कर दिया और प्रभुप्रेम के पद गाने में लीन हो गई। उनका मुख प्रेम और भक्ति की ज्योति से चमक रहा था और उपस्थित समुदाय तथा ब्राह्मण युवक मंत्रमुग्ध हो सुन रहे थे।

राणा और उसके सलाहकारों द्वारा मीराबाई को सताने में कोई कमी न आई। उन लोगों ने भक्तों और साधुओं को उनके महल में जाने से रोकने के लिए उन्हें डराना-धमकाना शुरू कर दिया। अपनी भक्ति में इस प्रकार की बाधाओं से तंग आकर उन्होंने आखिर चित्तौड़ छोड़ने का निश्चय कर लिया। उन्हें न लोक-लाज की चिंता थी, न अपने प्राणों का भय, परंतु उनकी वजह से उनके पास आनेवाले भक्तों को भी कष्ट सहने पड़ रहे थे जिसे मीराबाई का मन स्वीकार न कर सका। एक रात वे चुपचाप चित्तौड़ के दुर्ग से बाहर निकल पड़ीं। चित्तौड़ छोड़ना उनके लिए एक कठिन निर्णय रहा होगा, क्योंकि एक हिंदू नारी को कितनी भी पीड़ा और यातना क्यों न हो, वह अपने पति का घर नहीं छोड़ती। इतने दिन लोगों के ताने और राणा का अत्याचार धैर्यपूर्वक सहते रहने का शायद यही कारण था।

निश्चित रूप से यह मालूम नहीं कि मीराबाई कब चित्तौड़ छोड़कर गईं पर विद्वानों का अनुमान है कि 1534 ई. के अंत में गई होंगी। 1535 में जब गुजरात के सुलतान बहादुरशाह ने चित्तौड़ पर हमला किया, उसके कुछ महीने पहले वे चित्तौड़ से चली गई होंगी। यदि वे उस समय वहाँ होतीं तो चित्तौड़ पर जो विपत्ति आई और जो तबाही वहाँ हुई उसमें से उनके लिए अनाहत निकलना असंभव था।

गुजरात के सुलतान बहादुरशाह ने एक विशाल सेना सहित चित्तौड़ पर 1535 ई. में आक्रमण किया। राणा विक्रम या तो भाग गया अथवा अपने सामंतों की सहायता से किसी सुरक्षित स्थान पर पहुँचा दिया गया। इस प्रकार चित्तौड़ शासक-हीन रह गया। परंतु विधवा रानियों जवरबाई और कर्णवती ने दुर्ग की रक्षा का भार अपने हाथों में ले लिया। कुछ राज-भक्त सामंतों और योद्धाओं को इकट्ठा करके उन्होंने कुछ समय

जमकर युद्ध किया। फिर भी वे आक्रमणकारियों की बड़ी सैन्य-शक्ति का अपने सीमित साधनों द्वारा अधिक समय तक सामना न कर सकीं। जवरबाई युद्ध-भूमि में अपनी स्त्री-सेना के साथ वीरगति को प्राप्त हुईं। उन्होंने शत्रु सेना के अनेक योद्धाओं को धराशाई किया और अपनी वीरता और युद्ध-कौशल से सबको चकित कर दिया। परंतु बहादुरशाह ने फिर से अपनी सेना का संगठन किया और क़िले को घेर लिया। यह देखकर कि अब चित्तौड़ की रक्षा असंभव है, संपूर्ण पुरुष नागरिक केसरिया बाना पहने, शस्त्र उठाए क़िले का द्वार खोलकर शत्रुओं पर टूट पड़े। इस युद्ध में इनमें से एक भी जीवित न बचा। चित्तौड़ की सभी महिलाओं ने रानी कर्णवती के नेतृत्व में जौहर के द्वारा प्राण त्याग दिए। विजेता बहादुरशाह ने जब दुर्ग में प्रवेश किया तो उसे जन-शून्य और वीरान पाया।

मीराबाई के पीहर वाले हमेशा मेवाड़ के राणाओं का साथ देते और युद्ध में उनकी ओर से लड़ते रहे थे। उनके पिता ने मेवाड़ की ओर से लड़ते हुए अपने प्राणों की आहुति दी थी। परंतु इस बार राव वीरम देव, मीराबाई के प्रति राणा के दुर्व्यवहार से अत्यंत दुःखी और अप्रसन्न थे और वे राणा की मदद के लिए न आए।

मीराबाई बहादुरशाह के आक्रमण के कुछ महीनों पहले ही चित्तौड़ छोड़ चुकी थीं। कहा जाता है कि वे पहले अपने पीहर मेड़ता गईं। राव वीरम देव ने, जो चित्तौड़ में मीराबाई के कष्ट को जानते हुए भी विवश हो मौन थे, उनका बड़े स्नेह के साथ स्वागत किया। परंतु मेड़ता में उनका निवास सुख और शांतिपूर्ण होना संभव न था। क्या चित्तौड़ और क्या मेड़ता, पूरा राजस्थान ही रूढ़िवादियों और पंडितों के प्रभाव में था, रीति-रिवाज और कर्मकांड में जकड़ा हुआ था। बाहरमुखी क्रियाओं, उपवास, तीर्थ-यात्रा आदि का मीराबाई द्वारा स्पष्ट शब्दों में खंडन उनकी परंपराओं और कट्टरता की जड़ पर एक गहरा आघात था। अपने अनेक पदों में उन्होंने बाहरमुखी क्रियाओं का खंडन किया है। एक शब्द में वे कहती हैं कि परमात्मा की प्राप्ति के लिए भजन करना चाहिए; हे मित्र, उससे प्रेम करना चाहिए। यदि नदियों-सरोवरों में स्नान करने से हरि मिल

सकता तो मैं जल का जंतु बनना पसंद करती। यदि फल, कंद आदि खाने से प्रभु का मिलाप हो सकता तो बंदर बनना क्या बुरा है जो वन में फलों पर निर्वाह करते हैं। यदि पत्तियाँ आदि खाने से परमात्मा की प्राप्ति हो सकती है तो बकरियों की कोई कमी नहीं है, उन्हें परमात्मा की प्राप्ति हो जानी चाहिए थी। यदि पत्थर को पूजने से प्रभु का मिलाप हो सकता है तो मैं पहाड़ पूजने को तैयार हूँ, परंतु वे कहती हैं, बिना सच्चे प्रेम के प्रभु-प्राप्ति नहीं हो सकती:

साधन करना चाही रे मनवा, भजन करना चाही।
प्रेम लगाना चाही रे मनवा, प्रीति करना चाही॥
नित नहान से हरि मिलें तो मैं जल जन्तु होई।
फल मूल खाये हरी मिलें तो बानर बन्दर होई॥

.....
तुलसी पूजें हरी मिलें तो पूजूं तुलसी झाड़।
पत्थर पूजें हरी मिलें, तो मैं पूजूं पहाड़॥
दूध पिये ते हरी मिलें तो बहुत हैं भक्तिवाला।
मीराँ कहे बिना प्रेम के नाहिं मिले नंदलाला॥³²

इस प्रकार के कथन ने उस समय की धार्मिक मान्यताओं की नींव को हिला दिया। इसके फलस्वरूप जिस आलोचना और निंदा का सामना मीराबाई को चित्तौड़ में करना पड़ा था, उसने मेड़ता में भी उनका पीछा न छोड़ा। राव वीरम देव उनको पुत्रीवत चाहते थे; उनकी पत्नी ने शैशवकाल से उन्हें पाला था और उनके पूरे परिवार में वही एकमात्र कन्या संतान थीं परंतु वीरम देव एक न्याय-प्रिय शासक होने के साथ ही सामाजिक, पारिवारिक और धार्मिक परंपराओं के पोषक भी थे। वे अपनी प्रिय भतीजी के मार्ग में बाधक नहीं होना चाहते थे, परंतु अपने सामंतों और प्रमुख नागरिकों को अप्रसन्न भी नहीं करना चाहते थे। भावुक मीराबाई को वीरम देव की परेशानी समझने में देर न लगी। एक दिन उन्होंने चुपचाप,

बगैर किसी शिकायत या कटुता के मेड़ता छोड़ दिया, जिस प्रकार वे पहले चित्तौड़ छोड़ चुकी थीं।*

मेड़ता छोड़ने के बाद मीराबाई कहाँ गईं? इस विषय में इतिहास क़रीब-क़रीब मौन है और परंपरागत तथा मौखिक विवरण भिन्न-भिन्न हैं, फिर भी साधारणतया यह माना जाता है कि पहले वे वृंदावन गईं। जहाँ भी वे जाती थीं, वे भक्तों और धार्मिक पुरुषों की संगति में रहने का प्रयास करती थीं। वे वृंदावन में जीव गोस्वामी से मिलने गईं जिनका लोग बहुत आदर करते थे और सभी धर्म-पुरुषों में जिनकी बड़ी थाक थी। वे भगवान कृष्ण की गोपी-भाव से उपासना करते थे जिसमें संपूर्ण सृष्टि में केवल कृष्ण ही एक पुरुष माने जाते हैं तथा उनके सभी भक्त (स्त्री हों या पुरुष) उनको चाहनेवाली गोपियाँ मानी जाती हैं। इसके साथ ही जीव गोस्वामी कठोर संयम और त्यागपूर्ण जीवन बिताते थे और स्त्रियों का मुख तक नहीं देखते थे।

जब जीव गोस्वामी ने सुना कि कोई मीराबाई नामक भक्त-स्त्री उनसे मिलना चाहती हैं तो उन्होंने यह कहकर मिलने से इनकार कर दिया कि उनकी प्रतिज्ञा है कि वे कभी स्त्री का मुख नहीं देखेंगे। यद्यपि मीराबाई प्रसिद्ध जीव गोस्वामी से छोटी थीं, फिर भी वे भक्ति में परिपक्वता प्राप्त कर चुकी थीं। जीव गोस्वामी की ही गोपी-भावना का आधार लेकर उन्होंने कहलवाया कि वे समझती थीं कि वृंदावन में सिर्फ़ श्रीकृष्ण ही एकमात्र पुरुष हैं, परंतु उन्हें यह जानकर आश्चर्य हुआ कि यहाँ एक और पुरुष भी मौजूद है। जीवन में पहली बार किसी ने, और वह भी एक नारी ने, जीव गोस्वामी को इस आत्मविश्वास के साथ उत्तर दिया था। गोस्वामी की आँखों से भ्रम का पर्दा हट गया, बाहर आकर उन्होंने हाथ जोड़कर मीराबाई का अभिवादन किया और आदरपूर्वक स्वागत किया।

* कुछ विद्वानों का मत है कि जोधपुर के राव मालदेव द्वारा मेड़ता पर आक्रमण करने और वीरम देव के हार जाने के कारण मीराबाई को मेड़ता छोड़ना पड़ा।

मीराबाई वृंदावन में अधिक समय नहीं रुकीं। भारत के तीर्थों और धर्म-स्थानों में जिस खोखले रूढ़िवाद का प्रचलन था वह उनके भक्त-हृदय को कैसे भा सकता था? कहा जाता है कि वृंदावन से मीराबाई गुजरात की ओर चल पड़ीं। गुजरात-यात्रा का एक ध्येय यह भी हो सकता है कि वे अपने गुरु रविदास से मिलने वहाँ गई हों, जो संभवतः उस समय गुजरात में थे।* वे द्वारका कब पहुँचीं, इसका कोई पता नहीं लगता। वैसे जब उन्होंने मेड़ता छोड़ा तब उनकी आयु केवल 36 अथवा 38 वर्ष की थी। आयु में कम होते हुए भी मीराबाई की भक्ति आंतरिक आत्मिक अनुभवों तथा आत्म-ज्ञान के द्वारा पूर्णतया विकसित हो चुकी थी।

मीराबाई ने काफ़ी समय गुजरात में बिताया। उन्होंने गुजराती भाषा में अनेक पदों की रचना की है और उन्हें गुजराती साहित्य के श्रेष्ठ भक्त-कवियों में गिना जाता है। विद्वानों का अनुमान है कि उन्होंने यहाँ कुछ वर्ष शांतिपूर्वक बिताए।

चित्तौड़ के पतन के बाद कुछ सामंतों ने राणा विक्रम को लाकर फिर से मेवाड़ की क्षत-विक्षत राजगद्दी पर बिठाया। परंतु एक साल के अंदर ही उसे उनके चचेरे भाई बनबीर ने मार डाला।† सन 1537 में बनबीर ने अपने आपको राणा घोषित किया। 1540 में राणा साँगा के सबसे छोटे पुत्र और मीराबाई के छोटे देवर उदय सिंह ने कुछ राज-भक्त सामंतों की सहायता से बनबीर को मार भगाया और वह स्वयं राणा बन गया।

चित्तौड़ बड़े कठिन और कष्टपूर्ण समय से गुज़रा था। किसी समय एक शक्तिशाली राज्य की राजधानी आज घटकर एक साधारण सूबे के समान रह गई थी। वीर पुरुषों और स्त्रियों की एक पूरी पीढ़ी ही युद्ध में अपने प्राण गँवा चुकी थी। साधारण जनता इन सब विपत्तियों के परिणाम अभी

* संत रविदास ने गुजरात में काफ़ी समय बिताया था अथवा वे गुजरात की ओर जाते रहते थे। गुजरात में आज भी कई समुदाय ऐसे हैं जो अपने आपको रविदास जी के अनुयायी कहते हैं। संभव है कि मीराबाई ने जब तक रविदास जी गुजरात में रहे, कुछ समय अपने गुरु के चरणों में बिताया।

† बनबीर राणा साँगा के बड़े भ्राता पृथ्वीराज का अवैध पुत्र था।

भी भुगत रही थी, परंतु मेवाड़ वासी, मीराबाई को भूले नहीं थे। गरीब, साधारण जाति के सरल परिवारों में उनके पद बड़े प्रेम के साथ गाए जाते थे। चित्तौड़ निवासी अब अपने दुर्भाग्य को मीराबाई पर किए गए अत्याचारों का फल मानने लगे थे। राणा रतन सिंह को अस्वाभाविक मौत मरना पड़ा; राणा विक्रम की, जिसने मीराबाई के प्राण लेने के प्रयास किए, हत्या हो गई और चित्तौड़ के लोग, जिन्होंने उनकी निंदा की और उन्हें सताया, करीब-करीब बरबाद हो गए। सभी ओर एक गहरे पछतावे की भावना फैलने लगी। मीराबाई के दुःखी और कष्टपूर्ण जीवन को याद करके लोगों में उनके प्रति प्रेम और सहानुभूति की भावना बढ़ने लगी। हरएक के मन में यही विचार था कि उनके प्रति किए गए अन्याय का प्रायश्चित्त तभी हो सकेगा जब राणा और नागरिक उनसे क्षमा माँगकर उनको वापस ले आएँगे।

राणा उदय सिंह ने इन भावनाओं का आदर किया और कुछ ब्राह्मणों को मीराबाई को वापस ले आने के लिए द्वारका भेजा।

मीराबाई न तो अब राजवधू थीं, न ही चित्तौड़ को अपना घर मानती थीं। जिस जंजीर ने उन्हें मेवाड़ के राजघराने से बाँध रखा था उसे वे तोड़ चुकी थीं। उनके हृदय में राजमहल के पिंजरे में, चाहे वह सोने का पिंजरा ही क्यों न हो, लौटने की कोई इच्छा न थी। वे अपने भाग्य पर संतुष्ट थीं और उनका मन अपने प्रियतम परमात्मा के चरणों में लगा हुआ था। उन्होंने वापस चित्तौड़ लौटने के लिए इनकार कर दिया। ब्राह्मणों की प्रार्थना, उनका अनुनय-विनय और हठ उन्हें अपने निर्णय से न डिगा सका। अपने प्रयासों को असफल होते देख और राणा की अप्रसन्नता से डरकर ब्राह्मणों ने घोषणा की कि जब तक वे उनके साथ चित्तौड़ जाने के लिए तैयार न होंगी वे अन्न-जल ग्रहण नहीं करेंगे।

मीराबाई विचित्र दुविधा में थीं। वे चित्तौड़ लौटने के लिए तैयार न थीं और साथ ही यह भी स्वीकार नहीं कर सकती थीं कि बगैर अन्न-जल के ब्राह्मणों का प्राणांत हो जाए। इसी परेशानी में तीन-चार दिन बीत गए। ब्राह्मणों की हालत देखकर उनका दिल पसीज गया और विवश हो उन्होंने दूसरे दिन चित्तौड़ चलने के लिए स्वीकृति दे दी। कहा जाता है कि उस

दिन शाम को वे द्वारकाधीश के मंदिर में प्रार्थना करने के लिए गईं। दूसरे दिन सुबह जब पुजारियों ने मंदिर के द्वार खोले तो मीराबाई वहाँ नहीं थीं। केवल उनकी ओढ़नी मूर्ति के हाथ में लटक रही थी। पंडितों और पुजारियों ने यह मान लिया कि वे कृष्ण की मूर्ति में समा गई हैं।

यह कथा शीघ्र ही लोकप्रिय हो गई। राजस्थान में मीराबाई की भक्ति की गाथा फैल चुकी थी और उनके इस प्रकार के अंत की कथा ने न केवल मीराबाई की महिमा ही बढ़ाई बल्कि उनकी मृत्यु को आत्म-बलिदान का रूप भी दे दिया। ब्राह्मणों की समस्या इस प्रकार हल हो गई और वे भक्त मीराबाई के आत्मोत्सर्ग की इस कथा के साथ राणा के पास लौट आए। मेवाड़ के राणा और सामंत अपने पहले जैसे राजकीय जीवन में उलझ गए और मीराबाई को आसानी से भूल गए, क्योंकि मीराबाई के समकालीन लेखों और मेवाड़ की गाथाओं में उनके नाम का उल्लेख नहीं है।

कुछ आधुनिक विद्वानों ने इस घटना को मीराबाई के चुपचाप गायब हो जाने का प्रमाण माना है, उनकी मृत्यु का प्रमाण नहीं। इस प्रकार गायब होना अथवा मंदिर में से चुपचाप निकल जाना मीराबाई की दुविधा का एकमात्र समाधान था। रात्रि के समय चुपचाप मंदिर से निकलकर चले जाना उस समय कोई मुश्किल कार्य न था, क्योंकि उनके समय में यह मंदिर जीर्णशीर्ण अवस्था में था! सन 1473 में गुजरात के सुलतान महमूद बेगड़ा ने मंदिर को काफ़ी तोड़-फोड़ दिया था³³ और मीराबाई के समय तक उसकी लगभग वैसी ही क्षतिग्रस्त अवस्था थी।³⁴ रात के समय कोई पहरे आदि की व्यवस्था न थी और वे कुछ सहानुभूतिपूर्ण भक्तों की सहायता से आसानी से निकलकर चली गई होंगी।

* हरमन गैटे लिखते हैं, “आज का विशाल द्वारकानाथ जी का मंदिर अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में सतारा के साहूकार गोपाल नायक ताम्बेकर द्वारा बनाया गया है। बड़ौदा संग्रहालय (म्यूज़ियम) में इससे पहले के पुराने मंदिर का चित्र मौजूद है, जो महाराज अभय सिंह (जोधपुर, 1724 से 1748 ई.) द्वारा बनाए हुए मंदिर का चित्र है, जिससे प्रकट होता है कि उस समय वह मंदिर एक छोटा-सा साधारण भवन था। मीराबाई के समय में तो यह और भी छोटी और मामूली इमारत थी।”

मीराबाई के गायब होने का वर्ष 1546 माना जाता है, जब उनकी आयु 48 वर्ष की थी, परंतु अपने कुछ पदों में वे अपना वर्णन करते हुए कहती हैं कि वे वृद्ध हो चुकी हैं और उनके केश श्वेत हो गए हैं। इससे यह अनुमान होता है कि मीराबाई सन 1546 के बाद तक जीवित रहीं और उन्होंने वह अवस्था पाई जिसे सही अर्थों में वृद्धावस्था कहा जा सकता है।

विद्वानों ने भाटों की बहियों से मीराबाई की मृत्यु का विवरण प्राप्त करने की कोशिश की है। भाट राजस्थान के राजपरिवारों के जीवन की घटनाओं का विवरण लिखते रहते थे।* परंतु मीराबाई की मृत्यु के बारे में उनके लेख एक-दूसरे से भिन्न हैं।† डॉ. कल्याण सिंह शेखावत ने मीराबाई के जीवन पर खोज करते हुए मेड़ता के राजपुरोहितों की बहियों का निरीक्षण किया है। उनके अनुसार उनकी मृत्यु 1547 में द्वारका में हुई और उनका संस्कार द्वारका के पास बहनेवाली गोमती नामक एक छोटी-सी नदी के किनारे किया गया। डॉ. शेखावत इस लेख तथा गुजरात और राजस्थान में की गई अपनी खोज के आधार पर इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि सन 1547 में मीराबाई की स्वाभाविक मृत्यु हुई।

मृत्यु के समय मीराबाई का कोई राजनीतिक महत्त्व नहीं था। मेड़ता और मेवाड़ के राजपरिवार करीब-करीब बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ तक मीराबाई के प्रति उपेक्षापूर्ण ही रहे हैं।‡³⁵ भाटों और राजपुरोहितों के लेख विश्वसनीय नहीं माने जा सकते, क्योंकि वे उनकी मृत्यु के काफ़ी समय बाद लिखे गए होंगे। संभव है, उनकी मृत्यु की बात उन्होंने अपनी बहियों में तब दर्ज की हो जब समय बीतने पर उन्होंने महसूस किया कि वे इतनी

* भाटों के वंशजों ने उनकी बहियों को आज तक संभालकर रखा हुआ है।

† लूनवा के भूदान भाउ के अनुसार मीराबाई की मृत्यु सन 1546 में हुई, वे यह भी कहते हैं कि उनके मृत्यु-स्थान के बारे में कुछ पता नहीं है। रानी मंगा के भाटों ने मीराबाई की मृत्यु का वर्ष 1548 तथा कुछ अन्य ने 1547 बताया।

‡ श्रीमति पद्मावती शबनम द्वारा उद्धृत एक पत्र के अंश में भारतीय संत-साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान आचार्य परशुराम चतुर्वेदी लिखते हैं, “हाँ, इस बात की सूचना मुझे अपनी उदयपुर यात्रा के ही समय मिली थी कि वहाँ मीराबाई के प्रति आदर भाव कम है। मुझसे इसकी चर्चा चित्तौड़ दुर्ग के रहनेवाले लोगों तक ने की थी।”

महत्त्वपूर्ण हैं कि उनके बारे में राजपरिवारों के साथ कुछ लिखा जाए। भाट राजस्थान में रहते थे और जहाँ भी मीराबाई की मृत्यु हुई, वहाँ से संभवतः बहुत दूर थे। उन्होंने जो कुछ लिखा है वह सुनी-सुनाई बातों के आधार पर है, सीधी जानकारी के आधार पर नहीं। फिर भी उनके लेखों से यह बात स्पष्ट होती है कि मीराबाई की स्वाभाविक मृत्यु हुई।

आधुनिक विद्वान मीराबाई के परलोक-गमन की विभिन्न तारीखें मानते हैं। भाटों के साथ सहमत होते हुए कुछ विद्वान उनकी मृत्यु का वर्ष 1546, 1547 या 1548 मानते हैं, जब कि कुछ अन्य अपनी खोज और निष्कर्ष के आधार पर उनकी मृत्यु के वर्ष 1563 से 1573 तक बताते हैं।

जैसा कि कहा जा चुका है, चित्तौड़ छोड़ने के बाद मीराबाई की जीवन-गाथा का आधार मूलतः परंपरा, जनश्रुति और मौखिक विवरण है। मीराबाई के द्वारका से गायब होने के बाद उनके जीवन का सूत्र जोड़ने की कोशिश हरमन गैटे ने की है, परंतु वे मानते हैं कि उनके वर्णन का आधार “परिस्थिति-मूलक सबूत हैं, लिखित सबूत नहीं।”³⁶ उनके अनुसार द्वारका छोड़कर मीराबाई उत्तर भारत में आई और यहाँ कई स्थानों में अपनी भक्ति और प्रेम का संदेश देती हुई घूमती रहीं। चित्तौड़ के राणा उन्हें भूल चुके थे और परिपाटियों की कट्टरता तथा कर्मकांड की बेड़ियों में जकड़े हुए लोग मीराबाई के लुप्त हो जाने पर निश्चित थे। न तो उन्होंने मीराबाई को ढूँढ़ने की कोशिश की और न ही उन्हें इस ओर कोई रुचि थी। इस प्रकार वे उत्तर भारत में निर्विघ्न घूम सकती थीं और उनके आध्यात्मिक मार्ग में कोई बाधा डालनेवाला न था।

संदेश



मीराबाई का संदेश

मीराबाई का कोई शिष्य न था, क्योंकि उन्होंने किसी को दीक्षा नहीं दी। किसी अज्ञात मध्यकालीन कवि ने मीराबाई की प्रशंसा करते हुए कहा है कि मीराबाई का नाम अपने ही गुणों के लिए रहेगा क्योंकि उन्होंने न तो पुत्र को जन्म दिया और न ही किसी को शिष्य बनाया:

नाम रहेगो काम से, सुनो सयाने लोय*।

मीरा सुत जायो नहीं, शिश न कीयो कोय॥¹

मीराबाई का न कोई सांसारिक उत्तराधिकारी था और न ही आध्यात्मिक जो उनकी जीवनी और पदों को सुरक्षित रखता। अतएव उनके पद उनकी मृत्यु के कई साल बाद केवल मौखिक परंपरा के आधार पर लिखे गए हैं। यही कारण है कि वे व्यवस्थित रूप में नहीं मिलते जिस क्रम से वे लिखे गए। इस प्रकार सीमित की पुजारिन मीरा का सीमित सगुण-भक्ति से उस असीम, तीनों गुणों की सीमा से परे, परमात्मा के भक्त बनने का प्रमाण उनके पदों में तो मिलता है, परंतु उनके जीवन में इस परिवर्तन का समय और क्रम निश्चित नहीं किया जा सकता। कुछ पदों में मूर्ति-पूजा, तीर्थ, व्रत आदि की प्रशंसा और कुछ में इस प्रकार की

* लोय=लोग।

बाहरमुखी क्रियाओं का स्पष्ट खंडन, एक-दूसरे से विपरीत दो बातें हैं जिनके फलस्वरूप विद्वानों ने मीराबाई के कुछ पदों को प्रामाणिक माना है और कुछ को नहीं। इस प्रकार के निर्णय करने का कोई स्पष्ट मापदंड न होकर मीराबाई के बारे में उनके पूर्व-निर्णीत विचार ही रहे हैं। परंतु मीराबाई अपनी भक्ति के ध्येय और अपने आध्यात्मिक मार्ग को भली प्रकार जानती थीं। उनके जो पद आज मिलते हैं, वे उनकी आध्यात्मिक उन्नति की विभिन्न अवस्थाओं के अनुभवों को प्रदर्शित करते हैं। परंतु वे इतने मिल-जुल गए हैं कि उन्हें मीराबाई के आत्मिक विकास के क्रम को सामने रखते हुए छाँटना आवश्यक है। पर ऐसा कर सकना संभव नहीं, क्योंकि बहुत-से पद मौखिक परंपरा से इकट्ठे किए गए हैं, और कभी-कभी ऐसा लगता है कि किसी-किसी पद के कुछ अंश दूसरे पदों से आ गए हैं। इसलिए पाठक को एक ही पद में भावों और विचारों का ही नहीं, बल्कि पद-संतुलन और तुकांत तक का सहसा परिवर्तन मिलता है। प्रतीत होता है कि मीराबाई की जीवन-गाथा के समान ही उनके पद भी रहस्य ही बने रहेंगे।

मीराबाई द्वारा अपने जीवन के उत्तरार्ध में लिखे गए पदों के आधार पर अथवा दूसरे शब्दों में, उन पदों के आधार पर जो एक विस्तृत दृष्टिकोण तथा ऊँचे रूहानी अनुभव प्रदर्शित करते हैं, मीराबाई के संदेश और अन्य संतों की शिक्षा में समानता स्पष्ट दिखाई देती है।

सभी संतों के समान मीराबाई ने मनुष्य-जन्म को बहुत महत्त्व दिया है और मुक्ति की प्राप्ति के लिए इसे एक दुर्लभ अवसर माना है। वे कहती हैं कि नर-देह की प्राप्ति प्रभु का एक अनमोल प्रसाद है। इसे प्रभुभक्ति में तत्परता के साथ लगाना चाहिए। यह भवसागर को पार करने के लिए एक नौका है:

दुर्लभ नर देही तमे तत्पर थाव।

भवसागर तरवा ने बेसवा ने नाव॥²

संत रविदास जी मनुष्य-जन्म को 'दुलभ'* तथा गुरु तेग बहादुर जी 'अमोलक'† कहते हैं। कबीर साहिब के शब्दों में मनुष्य-देह की प्राप्ति के लिए देवता भी तरसते हैं।‡

सृष्टि के आदि से आत्मा इस संसार में बार-बार जन्म ले रही है। आवागमन के इस सिद्धांत का स्पष्ट संकेत मीराबाई ने अपने पदों में किया है। एक पद में वे राणा से कहती हैं, "हे राणा, मैं इस संसार में पहली बार नहीं आई हूँ; जब से यह ब्रह्मांड रचा गया है तभी से मैं यहाँ आ रही हूँ। इस जन्म में मैं मेड़ता परिवार में आई हूँ, मुझे मीराबाई नाम दिया गया है और राणा परिवार में ब्याही गई हूँ। परंतु आत्मा का न कोई परिवार है, न कोई नाम।"

आज काल की मैं नहिं राणा, जद यो ब्रह्माण्ड छायो।

मेड़तियाँ घर जन्म लियो है, मीराँ नाम कहायो॥⁶

एक अन्य पद में इसी भावना को व्यक्त करते हुए मीराबाई कहती हैं, "मैंने चौरासी लाख का चूड़ा अनेक बार पहना है ... विभिन्न जन्मों में मैंने अलग-अलग पति पाए हैं। परंतु अब मुझे बोध हो गया है कि मेरा सच्चा पति हरि है और मैं उसी के रंग में रँग गई हूँ।"

लख चौरासी रो चूडलो, पेयों में कंई बार।

ओ तो पति मेरी देही को संगी, मो पति सिरजणहार॥

जनम जनम कीया वर केता, विषया ते नरनार।

मैं तो राची रंगलु रंगी, गोविंदो हरि भरतार॥⁷

* दुलभ जनम पुन फल पाइओ बिरथा जात अबिबेकै॥³

† मानस जनम अमोलक पाइओ बिरथा काहे गवावड॥⁴

‡ या देही कूँ लौचैं देवा, सो देही करि हरि की सेवा॥⁵

चौरासी लाख योनियों में जीव के भ्रमण का वर्णन करते हुए गुरु अर्जुन देव जी* फ़रमाते हैं कि जीव ने कई जन्म कीड़ों और पतंगों के पाए; कई जन्म हाथी, मीन और हिरन के पाए; अनेक जन्मों में वह पक्षी और सर्प आदि योनियों में गया; कई जन्म बैल, अश्व आदि बना; दीर्घकाल के उपरांत यह मनुष्य-देह प्राप्त हुई है। हे प्राणी, अब प्रभु से मिलने का उपाय कर, प्रभु से मिलाप का यही अवसर है।

मनुष्य-जन्म का अनमोल अवसर प्राप्त हो जाने पर भी जीव तब तक प्रभु से मिलाप नहीं कर सकता जब तक वह किसी ऐसे पूर्ण पुरुष की सहायता और मार्गदर्शन प्राप्त न कर ले जो स्वयं रूहानी मंज़िलों को तय कर चुका है और परमात्मा से मिल चुका है। अपने एक पद में मीराबाई प्रभु-मिलाप को आत्मा का विवाह बताती हैं। जब आत्मा का प्रभुरूपी पति से विवाह हो जाता है तो अन्य विवाहित आत्माएँ उससे पूछती हैं कि हे भाग्यशाली सुहागिन आत्मा, तू इतने दिन कुंवारी क्यों रही?

सुरता सवागण नार कुंवारी क्यूं रही।¹⁰

मीराबाई उनको उत्तर देते हुए स्पष्ट करती हैं कि आत्मा का विवाह अभी तक न हो सका अर्थात् प्रभु से उसका मिलाप न हो सका, क्योंकि उसे सतगुरु नहीं मिले:

सतगुरु मिलिया नांय कुंवारी बीरा यूं रही॥¹¹

गुरु अमरदास जी इसी भाव को प्रकट करते हुए कहते हैं कि यदि आत्मारूपी स्त्री चारों युगों में भी भटकती रहे, वह सतगुरु के बिना

* कई जनम भए कीट पतंगा॥ कई जनम गज मीन कुरंगा॥
कई जनम पंखी सरप होइओ॥ कई जनम हैवर ब्रिख जोइओ॥
मिल जगदीस मिलन की बरीआ॥ चिरंकाल इह देह संजरीआ॥⁸

संत नामदेव जी कहते हैं:

अनेक बार पसू हूँ अवतरयौ। लख चौरासी भरमत फिरयौ।
पायौ नहीं कहीं बिश्राम। सतगुरु सरनि कह्यौ नहीं राम॥⁹

पति-मिलापरूपी सुहाग को प्राप्त नहीं कर सकती, 'जुग चारे धन जे भवै बिन सतगुरु सोहागु न होई राम॥'¹² दरिया साहिब मारवाड़ वाले फ़रमाते हैं, 'सतगुरु मेरे किरपा कीनी, उत्तम बर परनाई।'¹³

सभी संतों के समान मीराबाई इस बात पर ज़ोर देती हैं कि परमात्मा मंदिरों, तीर्थों या जंगलों-पहाड़ों में नहीं रहता। वह शरीर के अंदर है और अंदर जाने पर ही मिल सकता है। वे बताती हैं कि सतगुरु ही शरीर के अंदर वह दर्पण प्रकट करते हैं जिसमें प्रभु की झलक दिखाई देती है। घट के अंदर के इस रहस्य को सतगुरु के सिवाय और कोई नहीं जानता। वे कहती हैं, "मेरे सतगुरु ने मेरे अंदर का दर्पण प्रकट कर दिया जिसमें प्रभु की छवि दिखाई देती है, अब मैं इस आनंद में मग्न हो खुशी से नाचूंगी। मेरा प्रभुरूपी पति मुझे मिल गया, मैं सुहागिन हो गई। सतगुरु के सिवाय और कोई घट के आंतरिक भेद को नहीं जानता।"

सतगुरु मुकर दिखाया घट का, नाचूंगी दे दे चुटकी॥

मेरा सुहाग अब मोकूँ दरसा, और न जाने घट की॥¹⁴

अपने एक गीत में मीराबाई कहती हैं कि वे अपने प्यारे प्रभु की दासी बन गई हैं। अब उन्हें काशी जाने की क्या ज़रूरत है? गंगा भी उनके शरीर में है और जमुना भी, तथा शरीर के अंदर ही अविनाशी प्रभु का निवास है:

मैं तो हरि चरणन की दासी। अब मैं काहे को जाऊँ कासी॥
घट ही में गंगा घट ही में जमना घट घट हैं अविनासी।¹⁵

दादू दयाल भी यही भाव प्रकट करते हैं:

(दादू) कोई दौड़े द्वारिका, कोई कासी जाहिं।
कोई मथुरा कौं चले, साहिब घट ही माहिं॥¹⁶

इसी प्रकार कबीर साहिब कहते हैं:

जिस कारनि तटि तीरथि जाँहीं। रतन पदारथ घटहीं माहीं।¹⁷

अर्थात् जिस प्रभुरूपी अनमोल पदार्थ के लिए लोग तीर्थों और सरोवरों में भटकते फिरते हैं वह मनुष्य के शरीर में ही मौजूद है। साई बुल्लेशाह का कथन है:

बुल्ले शाह शौह अंदरों मिलया, भुल्ली फिरे लोकाई।¹⁸

कि उनको परमात्मा अपने शरीर के अंदर ही मिला है। लोग व्यर्थ ही उसकी खोज में बाहर भूले फिर रहे हैं।

संतों ने मनुष्य-देह को हरि-मंदिर तथा प्रभु का घर कहा है। गुरु नानक देव जी फ़रमाते हैं, 'काइआ महल मंदर घर हर का तिस मह राखी जोत अपार॥'¹⁹

इसी प्रकार मीराबाई भी मनुष्य-शरीर को घर की संज्ञा देते हुए अपने प्रभु-मिलाप के अनुभव का वर्णन करती हैं, "हे सखी, आज मेरे आनंद का कोई पार नहीं है, क्योंकि मैंने अपने घर में ही अपने प्रिय प्रभु को पा लिया है। मैंने उसे वनों में ढूँढ़ा, वृंदावन में ढूँढ़ा और ब्रज आदि धर्म-स्थानों में ढूँढ़ा, परंतु वह न मिला। शरीररूपी महल के सातवें माले या मंज़िल में एक अजीब झरोखा है। मैंने प्रभु को वहीं पाया।"

आज सखि मोरे अनन्द भयो है, घर में मोहन लाधो री॥

बन जोई वृन्दावन जोई। बिरज सब बाधो री॥

सतवे मलिये अजब झरोखे। वाहीतें हरिजी लाधो री॥²⁰

गुरु अमरदास जी ने अपने पद 'काइआ कामण अत सुआल्हिउ पिर वसै जिस नाले॥'²¹ में फ़रमाया है कि मनुष्य के शरीर में अनेक लोक, खंड, ब्रह्मांड यहाँ तक कि स्वयं परमात्मा निवास करता है। लगभग यही भाव मीराबाई अपने एक गुजराती शब्द में प्रकट करती हुई कहती हैं कि हे बंधु, यह समझ लो कि तुम्हारा शरीर समुद्र के समान अनेक ख़ज़ानों

से भरपूर है। अपने हृदय के कपाट खोलो और अंतर में दिव्य-ज्ञान का दीप जलाओ। इस प्रकार काया में अनेक फुलवारियाँ हैं, जिनमें आत्मारूपी मोर आंतरिक संगीत पर नृत्य कर रहे हैं। इसी काया में मानसरोवर है जिसमें आत्मारूपी हंस आनंद से क्रीड़ा कर रहे हैं। इस शरीर में हाट अथवा बाज़ार है जिसमें आध्यात्मिक व्यापार करके अपार लाभ प्राप्त करो। मीराबाई अपने प्रभु के गुणगान करती हैं और प्रार्थना करती हैं कि हे प्रभु, मुझे संतों के चरणों में वास प्रदान करो:

तमे जाणी ल्यो समुद्र सरीखा, मारा वीरा रे,

आ दिल तो खोली ने दीवो करो रे, होजी॥

आरे काया मां छे वाडीओ रे होजी,

मांहे मोर करे छे झींगोरा रे॥

आ रे कायामां छे सरोवर रे होजी,

मांहे हंस तो करे छे कल्लोला रे॥

आ रे कायामां छे हाटडां रे होजी,

तमे वणज वेपार करोने अपरंपारा रे॥

बाई मीरां के प्रभु गिरधरना गुण होजी,

देजो अमने संत चरणे वासेरा रे॥²²

मीराबाई ने नाम के महत्त्व और नाम-भक्ति का कई पदों में उल्लेख किया है। संतों के अनुसार नाम कोई लिखने, पढ़ने या बोलने में आ सकनेवाला शब्द या लफ़्ज़ नहीं है। नाम वह शक्ति है जिसने संपूर्ण सृष्टि और खंडों-ब्रह्मांडों की रचना की है और जो इन सबको आधार दे रहा है। संत कहते हैं कि नाम और परमात्मा दोनों एक हैं। सतगुरु अपने शिष्य की आत्मा को नाम के साथ जोड़ते हैं और नाम ही उसे आत्म-साक्षात्कार तथा परमात्मा की प्राप्ति की ओर ले जाता है। मीराबाई इस दिव्य नाम तथा इसकी अपार शक्ति का वर्णन करते हुए कहती हैं, "हे प्रियतम, मैं तेरे नाम से मोहित हो गई हूँ। मैंने सुना है कि नाम के अभ्यास से (अपने कर्मों

के भार के कारण) पत्थर के समान भारी होते हुए भी जीव संसार-सागर से तर जाता है। ...यह महान महिमामय नाम मुझे गुरु ने प्रदान किया है और इसके द्वारा मैंने तेरी प्रतीति प्राप्त कर ली है, तुझे पहचान लिया है।”

पिया तेरे नाम लुभाणी हो।

नाम लेत तिरता सुण्यां, जैसे पाहन पाणी हो। (टेर)

नाम महातम गुरु दियो, परतीत पिछाणी हो।

मीराँ दासी रावली*, अपणी कर जाणी हो॥²³

इसी विषय में मीराबाई एक अन्य पद में कहती हैं, “नाम का गहरा अमिट रंग मुझ पर चढ़ गया है। मैंने इस अमृतमय रस का प्याला पी लिया है और मैं अंतर में प्रवेश कर गई हूँ। ...मेरा यह नशा कभी उतर नहीं सकता चाहे कितने ही उपाय किए जाएँ। मैंने नाम की मदिरा पी ली है और इसके फलस्वरूप अब सांसारिक रंग मुझे नहीं सुहाते।” मीराबाई कहती हैं कि हे प्रभु तेरे नाम के द्वारा संसार के सभी कच्चे रंग उड़ जाते हैं।

यो तो रंग धताँ† हि लाग्यो हे माय। (टेक)

पिआ पियाला अमरत रस का, चढ़ गई घूम घुमाय।

यो तो अमल म्हारो कबहु नै उतरै, कोटन करो उपाय॥

पिया पियाला नाम का रे, और न रंग सुहाय।

मीराँ के प्रभु गिरधरनागर, काचो रंग उड़ जाय॥²⁴

गुरु नानक देव जी ने नाम के रंग को कभी न उतर सकनेवाला मजीठी रंग कहा है। आप कहते हैं कि अगर अपनी देह को वास्तव में रँगना चाहते

* रावली=आपकी।

† धताँ=गहरा, पक्का।

हो तो नाम का मजीठी रंग प्राप्त करो। इस रंग से रँगनेवाला व्यक्ति अर्थात् सतगुरु यदि रँग दे तो ऐसा रंग चढ़ जाएगा जैसा और कहीं दिखाई नहीं देता:

काइआ रंडण जे थीऐ पिआरे पाईऐ नाउ मजीठ॥

रंडण वाला जे रंडै साहिब ऐसा रंग न डीठ॥²⁵

‘सिध गोस्ट’ में गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं:

नामे राते अनदिन माते नामै ते सुख होई॥²⁶

अर्थात् जो व्यक्ति नाम में लीन हो जाता है वह उसके रस में निरंतर मस्त रहता है और सच्चे सुख को प्राप्त करता है। कबीर साहिब नामरूपी अमल का वर्णन करते हुए कहते हैं, नाम अमल माता रहै, पियै अमी रस सार॥²⁷ मीराबाई भी नामरूपी रस के आनंद का उल्लेख करती हुई कहती हैं:

मैं अमली हरि नाम का म्हांने बायड़* आवे।

और अमल कई काम को, चढ़न उतर जावे॥²⁸

केवल सतगुरु ही नाम का वह दुर्लभ प्रसाद प्रदान कर सकते हैं जो मीराबाई के शब्दों में आत्मा का सच्चा और असली धन है, जिसे न चोर चुरा सकते हैं और न ही जो खर्च करने से घटता है, बल्कि दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जाता है:

पायो जी मैंने नाम रतन धन पायो॥ टेक॥

बस्तु अमोलक दी मेरे सतगुर, किरपा कर अपनायो॥

खरचै नहिं कोई चोर न लेवे, दिन दिन बढ़त सवायो॥²⁹

यह नाम मनुष्य के शरीर में एक दिव्य ध्वनि के रूप में प्रकट होता है। संतों ने इसका नाम, शब्द, बाणी, धुन आदि कहकर वर्णन किया है।

* बायड़=नशे की लहरें।

यह बाइबल का 'वर्ड', कुरान शरीफ़ का 'कुन' और 'कलमा' तथा वेद-शास्त्रों का 'नाद' और 'आकाशवाणी' है। मीराबाई ने इस दिव्य संगीत अथवा शब्द का उल्लेख अपने कई पदों में किया है। वे कहती हैं कि सतगुरु ने मेरे अंतर में वह शब्द प्रकट कर दिया है जिसकी मैं अंश हूँ* और मेरा ध्यान उसकी ध्वनि में लग गया है:

सतगुरु सबद लखाया अंसरी, ध्यान लगाया धुन में॥³¹

इस प्रकार वे कहती हैं कि मैं न पीहर में रहती हूँ न ससुराल में, मैं तो अपने सतगुरु के प्रदान किए हुए शब्द में वास करती हूँ:†

पीहर बसूँ न बसूँ सास घर, सतगुरु सबद सँगाती॥³³

जब जिज्ञासु की आत्मा को सतगुरु अंतर में शब्द की धुन के साथ जोड़ देते हैं तो आवागमन की विकट श्रृंखलाएँ टूट जाती हैं। मीराबाई कहती हैं कि पूर्व जन्मों के पुण्यों के फलस्वरूप मुझे सतगुरु का मिलाप प्राप्त हुआ है। मेरे सतगुरु अंतर्धामी हैं। उन्होंने मुझे उस निर्भय शब्द को सुनने के योग्य बनाया और मेरे जन्म-मरण का दुःख दूर कर दिया।‡

सतगुरु सांमी अंतरजामी, वो पूरब पुत्र मिलायो॥

जनम-मरण का सांसा मेट्या, वो निरभै सबद सुणायो॥³⁵

इसी प्रकार उन्होंने अपने प्रभु गिरधर नागर को शब्द के सरोवर में समाकर प्राप्त किया है:

* आत्मा परमात्मा का अंश है और संतों के अनुसार शब्द और परमात्मा दोनों एक ही हैं। कबीर साहिब कहते हैं, 'कहै कबीर तैं सबद को परखि ले, सबद ही आप करतार भाई॥'³⁰

† कबीर साहिब कहते हैं कि जब मुझे पूर्ण गुरु मिले तो उन्होंने मेरी सुरत अथवा आत्मा को शब्द में मिला दिया, 'कहै कबीर मिले गुरु पूरे, सबद में सुरत मिलाई॥'³²

‡ इसी भाव को कबीर साहिब इस प्रकार प्रकट करते हैं: 'सतगुरु सबद बिचारि ले, तो जुग जुग जीजै॥'³⁴

मीरा के प्रभु गिरधर नागर, सबद सरोवर धँसी॥³⁶

शब्द की यह दिव्य ध्वनि मनुष्य के शरीर में निरंतर गूँज रही है। शब्द की दो विशेषताएँ हैं: प्रकाश और ध्वनि। मीराबाई इनका स्पष्ट संकेत कर देती हैं, "गूँज रहा है, गूँज रहा है, तेरे शरीर में घड़ियाल गूँज रहा है, तेरे शरीर में दस दरवाजे हैं, जहाँ नित्य नगाड़े की आवाज़ गूँज रही है। इसी काया में ज्योति जल रही है और उसके तेज की धाराएँ गूँज रही हैं।"*

वागे छे रे वागे छे तारी काया मां घडीयाल वागे छे॥

आरे काया ना दश दरवाजा, नित नी नौबत गाजे छे॥

.....

आरे काया मां जोत जले छे, तेजना बीबकार वागे छे॥³⁸

धरती में हल चलाकर खेती करने और बीज बोने† के उदाहरण के द्वारा मीराबाई नाम के अभ्यास, नाम के प्रकाश और आवाज़ का वर्णन

* आंतरिक मंडलों में शब्द की आवाज़ और प्रकाश की ओर संकेत करते हुए पलटू साहिब कहते हैं:

उलटा कूवा गगन में तिस में जरै चिराग॥ ...

निकसै एक अबाज चिराग की जोतिहिं माहीं।

ज्ञान समाधी सुनै और कोउ सुनता नाही॥³⁷

† कबीर साहिब भी नाम के अभ्यास की तुलना खेती से करते हुए कहते हैं:

सुमिरन का हल जोतिये, बीजा नाम जमाय।

खंड ब्रह्मंड सूखा पड़ै, तहू न निस्फल जाय॥³⁹

गुरु नानक देव जी फ़रमाते हैं कि मन को हल चलानेवाला बनाओ, करनी अथवा उत्तम रहनी को कृषि कर्म बनाओ, श्रम अथवा अभ्यासरूपी जल से सींचकर नामरूपी बीज बोओ और संतोषरूपी सुहागा (पलटा) चलाओ। प्रेम के साथ ऐसी खेती करने से नामरूपी बीज अंकुरित होकर फलीभूत होगा:

मन हाली किरसाणी करणी सरम पाणी तन खेत॥

नाम बीज संतोख सुहागा रख गरीबी वेस॥

भाउ करम कर जंमसी से घर भागठ देख॥⁴⁰

करती हैं और बताती हैं कि शरीर में नाम कहाँ प्राप्त होता है। वे कहती हैं कि मेरी राम-नामरूपी धन की खेती है और यह खेती करते हुए मेरी आत्मा प्रभु में लीन रहती है:

राम नाम धन खेती मेरी सुरता प्रभु में रेती।⁴¹

उत्तर प्रदेश में गंगा और यमुना के बीच की भूमि बहुत उपजाऊ मानी जाती है। गंगा और यमुना के बीच के स्थान अर्थात् दोनों आँखों के बीच के केंद्र की ओर इशारा करती हुई मीराबाई कहती हैं कि यह स्थान नाम का बीज बोने के लिए उत्तम है। दोनों नदियाँ आँखों के केंद्र से ऊपर की ओर जानेवाले दाएँ और बाएँ ओर के मार्ग हैं। इन दोनों मार्गों के बीच में अथवा दोनों आँखों के मध्य में अभ्यासी को अपना ध्यान एकत्रित करना पड़ता है। मीराबाई कहती हैं:

एक साल मैंने खेती पाई, गंगा जमुना रेती॥

राम नाम का बीज पड़ा है, निपजत हीरा मोती॥⁴²

मनुष्य के शरीर में आत्मा (अथवा मीराबाई के शब्दों में हंस) का केंद्र आँखों के पीछे तीसरा तिल अथवा तृतीय नेत्र है। शरीर के नौ द्वारों को खाली करके आत्मा जब केंद्र पर आती है तो वह एक उज्ज्वल प्रकाश देखती है, जिसे मीराबाई ने इस पद में ज्योति कहा है:

भृकुटि मंडल में हंस बिराजे वहां दरशे एक जोती॥⁴³

इस स्थान पर पहुँचकर आत्मा शब्द के संपर्क में आती है। सुरत (आत्मा की सुनने की शक्ति) और निरत (आत्मा की देखने की शक्ति) के सहारे आत्मा यहाँ से ऊपर के मंडलों की यात्रा पर चल पड़ती है। खेती के उदाहरण का क्रम जारी रखते हुए मीराबाई कहती हैं कि आत्मा की सुनने और देखने की शक्तियाँ वे दो बैल हैं जिनको जोतकर वे खेती कर रही हैं। उनका तात्पर्य है कि आँखों के केंद्र पर आने के बाद आत्मा

सुरत और निरत के द्वारा शब्द की ध्वनि और प्रकाश का रस, जब चाहे तब लेती है:

सुरत निरत का बैल बनाया जब चाहै जब जोती।⁴⁴

आँखों के केंद्र पर आने और शब्द की ध्वनि और ज्योति के साथ जुड़ जाने पर ही अभ्यासी के हृदय में प्रभु के लिए सच्चा प्रेम जाग्रत होता है। पद समाप्त करते हुई मीराबाई कहती हैं कि इस अवस्था को प्राप्त करने पर ही उसके हृदय में हरि के चरणों की प्रीति उत्पन्न हुई:

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरि के चरण पर प्रीती॥⁴⁵

जैसा कि कहा जा चुका है, आत्मा के अपने निजधाम की यात्रा में गुरु का बहुत महत्त्व है। दीक्षा अथवा नामदान के द्वारा वे अपने शिष्य को आत्मिक अभ्यास की विधि सिखाते हैं और अंतर में उसे शब्द के साथ जोड़ते हैं। जब शिष्य आँखों के केंद्र पर पहुँचकर अपनी आंतरिक यात्रा शुरू करता है तो वहाँ गुरु अपने ज्योतिर्मय स्वरूप अथवा शब्द-स्वरूप में उसका मार्गदर्शन करते हैं और उसे विभिन्न मंज़िलों से ले जाते हुए सतलोक या प्रभु के धाम में पहुँचा देते हैं। संतों ने नामदान को शिष्य की आत्मा का गुरु के घर में नया जन्म कहा है। मीराबाई इस विचार को एक भारतीय पिता और पुत्री के रूपक द्वारा प्रकट करती हैं। जन्म के बाद कन्या को उसका पिता पालता-पोसता, पढ़ाता-लिखाता और ससुराल में एक अच्छी पत्नी बनने के योग्य बनाता है। पिता ही पुत्री के लिए अच्छा वर ढूँढ़कर उसका विवाह करता है। संतमत में, पिता के समान ही, गुरु अपने शिष्य की आत्मा की देखभाल करते हैं, उसकी सहायता और मार्गदर्शन करते हैं और अंत में सतगुरु ही आत्मा का उसके असली पति, परमात्मा से मिलाप करवाते हैं। मीराबाई कहती हैं कि संतों का समुदाय ही उसका पीहर है अर्थात् संत-सतगुरु ही उसके पिता हैं और उसका ससुराल अर्थात् पति का घर सतलोक है:

सासरियो सतलोक में, पीहरियो साधां मांय।⁴⁶

मीराबाई आगे कहती हैं कि अपने प्यारे प्रभु के बगैर वह रह नहीं सकतीं और गुरु के बिना इस संसार-सागर को पार कर हरि के पास पहुँच नहीं सकतीं:

हरि बिना रह्यो न जाय, गुरां बिना तरयो न जाय।⁴⁷

पूर्व और पश्चिम के संत-महात्माओं का कथन है कि मनुष्य को अपने कर्मों का फल भोगना पड़ता है, चाहे वे कर्म अच्छे हों या बुरे। विधि का यही विधान है कि जो जैसा बोएगा वह वैसा ही काटेगा। जीव को अपने कर्मों का फल भुगतने के लिए बार-बार जन्म लेना पड़ता है और उसके अच्छे कर्म भी उतने ही बंधनकारक होते हैं जितने कि बुरे। यह कार्य और कारण का नियम कर्म-सिद्धांत कहलाता है, जो अटल है और संपूर्ण रचना इसके अधीन है। मीराबाई अपने पदों में कर्मों के सिद्धांत का उल्लेख करती हैं कि इस संसार के सभी सगे-संबंधी केवल पिछले कर्मों के फलस्वरूप साथ हैं; अतएव कुल, परिवार आदि के बंधन अर्थहीन हैं। हम संसार में देखते हैं कि एक ही माता के दो पुत्रों के कर्म अलग-अलग होने की वजह से उनका जीवन एक-दूसरे से भिन्न होता है। एक तो सिंहासन पर बैठता है और दूसरा हल चलाकर अपना पेट भरता है।... इस जगत में हमारे सभी मेल-जोल कर्मों की वजह से हैं, अन्यथा जग में वास्तव में हमारा कोई नहीं है:

राणाँजी कर्मा रो सँगाती*, कुल में कोई नहीं। (टेक)
एक तो माता रै दोय दोय डीकरा†,
ज्यांकी न्यारी न्यारी भाँत वाँकी न्यारी न्यारी करमां रेख।
राणाँ...॥

* सँगाती=साथी।

† डीकरा=पुत्र।

एक तो राजाजी री गद्दी बैठिया, दूजो हल'र बैल भरतो पेट*।
राणाँ...॥⁴⁸

एक अन्य छोटे गीत में मीराबाई कर्म-सिद्धांत को समझाते हुए कहती हैं कि इस संसार में जीवन थोड़े समय के लिए ही है, इसलिए क्यों सांसारिक जंजालों में उलझा जाए? माता-पिता ने तो जन्म दिया है, परंतु सृष्टि की रचना करनेवाले ने हमें कर्मों के बंधन में बाँध दिया है। जो कुछ हम उपभोग करते हैं, खर्च करते हैं और परोपकार करते हैं उन सबका फल हमें मिलेगा। जो कुछ हमने दिया है या लिया है उसका हिसाब ही हमारे साथ जाएगा, इसके सिवाय संसार की और कोई वस्तु साथ नहीं जाएगी। मीराबाई कहती हैं कि यही हमारा प्रभु की भक्ति करने का अवसर है और भक्ति के द्वारा ही हम भवसागर को पार कर सकेंगे:

जग में जीवणा थोड़ा राम कुण करे रे जंजार॥
मात पिता तो जनम दियो है, करम दियो करतार।
कइरे खाइयो कइरे खरचियो, कइरे कियो उपकार॥
दिया लिया तेरे संग चलेगा, और नहीं तेरी लार।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, भज उतरो भव पार॥⁴⁹

मन और माया परमात्मा की प्राप्ति के मार्ग में दो प्रबल रुकावटें हैं। मन की रुचि संसार के पदार्थों और विषय-भोगों की ओर है और वह उन्हीं के पीछे भागता रहता है। वह कभी स्थिर होकर नहीं बैठता, हमेशा कुछ न कुछ सोचता रहता है, हमेशा सांसारिक वस्तुओं व शक्तियों का चिंतन करता रहता है। वह अपनी अस्थिरता और निरंतर भटकते रहने की आदत तभी छोड़ता है, जब उसे संसार के नाशवान सुखों से अधिक उत्तम

* हल'र बैल भरतो पेट=हल में बैल जोतकर गुजारा करता है।

सुख और अविनाशी आनंद प्राप्त हो जाए। यह आनंद, नाम या शब्द की दिव्य ध्वनि को सुनने और अंतर में उसके साथ जुड़ने पर ही प्राप्त होता है।* मीराबाई कहती हैं कि उनका मन, जो जन्मों-जन्मों से आत्मिक आनंद से अनजान और प्रभु की ओर से सोया हुआ था, सतगुरु के दिए हुए शब्द को सुनकर जाग्रत हो उठा:

जनम जनम का सोया मनुआ, सतगुरु शब्द सुन जागा॥⁵¹

मन की हठी और उच्छृंखल प्रवृत्ति की तुलना एक मदमत्त हाथी की वृत्ति से करती हुई मीराबाई सतगुरु से प्रार्थना करती हैं कि वे अपना हाथ अंकुश के समान उनके सिर पर रखें ताकि वे मन को वश में कर सकें:†

यो मन मेरो बड़ो हरामी, ज्यूँ मदमातो हाथी।

सतगुरु हाथ धरौ सिर ऊपर, आँकुस दै समझाती॥⁵⁴

दीर्घकाल तक निरंतर विषय-सुख में डूबे तथा संसार के पदार्थों के मोह-जाल में उलझे रहकर मन ने अपने ऊपर मैल की परतें जमा ली हैं। मीराबाई कहती हैं कि गुरु वह कुशल धोबी है जो मन की समस्त

* गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं, 'नाम रंग इह मन त्रिपताना बहुर न कतहूँ धावउ रे॥'⁵⁰

† गुरु नानक देव जी फ़रमाते हैं कि मन हाथी के समान कायारूपी उद्यान में उच्छृंखल हो भटक रहा है। गुरु द्वारा दिए गए सच्चे शब्दरूपी अंकुश से उसे वश में किया जा सकता है:

मन कुंचर काइआ उदिआनै॥ गुर अंकस सच सबद नीसानै॥⁵²

गुरु रामदास जी कहते हैं कि मन प्रति-पल विभिन्न प्रकार के भ्रमों के पीछे बाहर दौड़ता है, वह निजघर अथवा आँखों के केंद्र में स्थित होकर नहीं बैठता। गुरु उसके मस्तक पर शब्दरूपी अंकुश रखकर उसे इस केंद्र (घर) का वासी बना देते हैं:

मन खिन खिन भरम भरम बहु धावै तिल घर नही वासा पाईऐ॥

गुर अंकस सबद दारू सिर धारिओ घर मंदर आण वसाईऐ॥⁵³

मलिनताओं को धो देता है।* परमात्मा की स्मृति के साबुन और प्रीतिरूपी जल से गुरु अपने शिष्य के मन को धो डालता है। इस प्रकार स्वच्छ होने के बाद शील आदि गुणों को संजोकर मन निर्मल हो जाता है और फिर कभी मैला नहीं होता:

धोयाँ न मैला होय, हरिजन धोबिया मन धोय॥

.....

सूरत साबू प्रीत जल से, कमियाँ शील संजोय।

ऐसी धोवट धोय धोबिया, फेर ना मैला होय॥⁵⁸

माया और साथ ही तृष्णा भी, अभ्यासी के आध्यात्मिक मार्ग में बहुत बड़ी रुकावटें हैं। भारतीय दुलहन का अपना प्रिय रूपक लेकर मीराबाई परमात्मा की प्राप्ति के मार्ग में आनेवाली इन बाधाओं का उल्लेख करती हैं। नववधू अपने पति से मिलने जाना चाहती है, परंतु मीराबाई के समय के रिवाज के अनुसार उसे अपने पति के कमरे में अकेले और बिना किसी को मालूम हुए जाना है। पर उसके मार्ग में दो बाधाएँ हैं, पहली तो है उसकी सास (माया) जो छत पर सो रही है और दूसरी है उसकी ननद (तृष्णा) जो दालान में सो रही है। अपने पति के कमरे में जाने का मार्ग चौबारे (मनुष्य-शरीर) और छत (आँखों के केंद्र अथवा तीसरे तिल) से होकर जाता है:

* गुरु को स्वामी जी महाराज (स्वामी शिवदयाल सिंह जी) भी मन और आत्मा को धोनेवाला धोबी कहते हैं:

चुनर मेरी मैली भई। अब का पै जाऊँ धुलान॥⁵⁵

धुबिया गुरु सम और न कोय। चदरिया धोई सूरत जोय॥⁵⁶

कबीर साहिब फ़रमाते हैं:

गुरु धोबी सिष कापड़ा, साबुन सिरजनहार।

सूरत सिला पर धोइये, निकसै रंग अपार॥⁵⁷

सासू सूती परसाल नणद चोबारा।
म्हारा पिवजी महल रे मांय जगाय लीज्यो रे॥⁵⁹

मीराबाई के शब्दों में दुलहन की सखी उसे सलाह देती है कि हे परमात्मा की प्यारी वधू, तुझे अपने प्रियतम को जगाना ही चाहिए:

हर की प्यारी रे म्हें थारा पिव ने जगायो।⁶⁰

पद के अंत में मीराबाई कहती हैं कि हे भ्रमों में सोए हुए प्राणी, जागो; मैं तो जागकर अपने प्रियतम के पास चली गई और मेरे सभी भ्रम दूर हो गए:

केवे मीराँ दास सुता नर जागो।
मैं तो गया री सांवरिया री लार भरम सभी भागो॥⁶¹

संतों ने हमेशा सत्संग की महिमा की है। आंतरिक रूहानी मंडलों में गमन करनेवाले तथा परमात्मा का मिलाप प्राप्त कर चुके महात्मा की संगति को संत सच्चा सत्संग कहते हैं। निरंतर बाहर भटकनेवाला मन सत्संग के द्वारा ही वश में आता है और धीरे-धीरे परमात्मा के रंग में रँग जाता है। अपने एक गुजराती पद में मीराबाई कहती हैं, “आज मुझे संतों का संग मिला है, मेरे लिए यह बड़े सौभाग्य की बात है। हमेशा संतों का संग करना चाहिए, क्योंकि उनकी संगति में परमात्मा के प्रेम का रंग चौगुना चढ़ता है। साकत अर्थात् दुष्ट लोगों की संगति कभी नहीं करनी चाहिए क्योंकि इससे आध्यात्मिक अभ्यास में बाधा आती है। संतों के चरणों में अड़सठ तीर्थों का फल है, उनके चरण करोड़ों काशी और करोड़ों गंगा से कहीं अधिक पवित्र हैं।” ... मीराबाई कहती हैं कि उन्होंने अपने प्रभु के गुणों का ज्ञान संतों की संगति से ही पाया है और वे हमेशा संतों के चरणकमलों की धूलि चाहती हैं:

आज मारे साधु जननो संग रे राणा, मारां भाग्य भल्यां रे॥
साधु जननो संग जो करीए पियाजी, चड़े ते चोगण्यो रंग रे॥

साकुट जननो संग न करीए पिया जी, पाडे भजन मां भंग रे॥
अडसठ तिरथ संतों ने चरणे पियाजी कोटि काशी ने कोटि गंगरे॥⁶²

एक अन्य गीत में मीराबाई कहती हैं कि हे मनुष्य, तू सत्संग के रस को ग्रहण कर, तू सत्संग के रस को चख। केवल दो घड़ी के सत्संग से मुक्ति प्राप्त हो सकती है, वेद आदि धर्मग्रंथ इसके साक्षी हैं:

सत्संग नो रस चाख प्राणी, तुं तो सत्संग नो रस चाख॥ ...
सत्संगथी बे घड़ीमां मुक्ति, वेद पुरे छे साख॥⁶³

स्वयं सत्संग के गहरे रंग में रँगी हुई मीराबाई आनंद के साथ गाती हुई कहती हैं, “संत ही मुझे प्रिय हैं, वे ही मेरे अपने हैं। मैं संतों की हूँ और संत ही मेरे जीवन और प्राण हैं। मीराबाई संतों की संगति में इस प्रकार समा गई हैं जिस प्रकार मक्खन में घी समाया रहता है”:

साधु हमारे हम साधुन के, साधु हमारे जीव।
साधुन मीराँ मिल रही है, जिमि माखन के घीव॥⁶⁴

सभी संत-महात्माओं के आंतरिक रूहानी अनुभव समान होते हैं, चाहे वे पूर्व में हुए हों चाहे पश्चिम में। नामदेव जी, कबीर साहिब, पलटू साहिब और अन्य संतों के समान ही मीराबाई भी कुछ पदों में अपने आंतरिक अनुभवों का वर्णन करती हैं। वे कहती हैं, “हे सखी, गगन मंडल दिव्य संगीत की ध्वनि से गूँज रहा है। ऐ मेरी आत्मा, बिना झालर के होनेवाली झंकार को सुन। सुन्न* के शिखर पर दीपक जगमगा रहा है। ऐ मेरी आत्मा, वह बिना बत्ती और बिना तेल के निरंतर जल रहा है।”

गगन मंडल बाजा बजै ए।
हे म्हारी सुरता बिन झालर झणकार॥

* सुन्न=आत्मा की आंतरिक मंडलों की यात्रा में तीसरी मंजिल।

सोवन शिखर* दिवलौ जगै ए।

हे म्हारी सुरता बिन बाती बिन तेल॥⁶⁵

अन्य संतों ने भी लगभग इसी प्रकार अपने आंतरिक अनुभवों का वर्णन किया है। इनसान के सिर को 'उलटा कुआँ' की संज्ञा देते हुए पलटू साहिब कहते हैं कि वहाँ निरंतर बिना बाती और बिना तेल के दीया जल रहा है।[†] आंतरिक ज्योति और शब्द का वर्णन करते हुए कबीर साहिब कहते हैं कि आंतरिक मंडलों का रहस्य कोई अनुभवी साधक ही जानता है। वहाँ बगैर बादल के बिजली चमकती है, बिना सूर्य के प्रकाश हो रहा है तथा बिना किसी वाद्य और स्वर के शब्द की धुन गूँज रही है।[‡] आंतरिक मंडलों के दिव्य आनंद का वर्णन करते हुए मीराबाई कहती हैं कि भँवरगुफा में भ्रमर (अर्थात् आत्मा) आनंद से दिव्य पुष्पों पर उड़ रहे हैं, वे पुष्प जिनकी सुगंध के रस में भ्रमर लीन हैं। भँवरगुफा में आत्मारूपी स्त्रियाँ खुशी से झूल रही हैं, वे स्त्रियाँ जिन्होंने पाँच तत्त्व के घट अथवा देह में ज्ञान का दीपक जलाया है। मेरे दोनों नेत्र सबकुछ भूलकर अपने प्रियतम को देख रहे हैं। निरंतर भटकते रहने से उत्पन्न निद्रा अथवा थकान दूर हो गई है और मेरे प्रियतम मुझसे सीधे वार्तालाप कर रहे हैं:

भँवर गुफा रे मांय भंवरा भंव रीया।

ज्यांरी महक महक आवे बास भंवर रंग भीजे॥

* सोवन शिखर=सुन्न का शिखर।

† उलटा कूवा गगन में तिस में जरै चिराग॥

तिस में जरै चिराग बिना रोगन बिन बाती।

छः रितु बारह मास रहत जरतै दिन राती॥⁶⁶

‡ महरम होय सो जानै साधो, ऐसा देस हमारा॥

बिन बादर जहँ बिजुरी चमकै, बिन सूरज उँजियारा।

बिना सीप जहँ मोती उपजै, बिन सुर सब्द उचारा॥⁶⁷

दीपक देखा गैब का, बिन बाती बिन तेल॥⁶⁸

भँवर गुफा रे मांय नार्यां झूले।

ज्यांरे पांच (तत्त्व) तंत घट मांय दिवलो संजोयो॥

मगन होया दोड़ नैण पिया पल खोलो।

भटकत उड़ गई नींद पिया मुंडे बोलो॥⁶⁹

मीराबाई के प्रायः सभी पदों में प्रेम और विरह की धारा बह रही है। उनका अपना जीवन अपने प्यारे सतगुरु और परमात्मा के वियोग की पीड़ा की एक लंबी कथा है। मीराबाई के अनुसार यह प्रेम और विरह उनको अपने सतगुरु के प्रसाद के रूप में प्राप्त हुआ है। वे कहती हैं, "मेरे सतगुरु ने मुझे दिव्य प्रेम के उस बाण से मारा है जो विरह में बुझा हुआ है।"

भर मारी रे बाना मेरे सतगुरु बिरह लगाय के।⁷⁰

प्रभु-मिलन के मार्ग में प्रेम अगुआ बनकर आता है और उसी के पीछे-पीछे आती है विरह की वेदना। विरह की पीड़ा तथा प्रियतम से मिलाप प्राप्त करने की व्याकुलता ही प्रभुप्रेम को बढ़ाती और दृढ़ करती है। मीराबाई कहती हैं कि अपने विरह के आँसुओं से सींचकर ही उन्होंने प्रेमरूपी बेल को विकसित किया है और वह बेल अब फैलकर उनके तन, मन और प्राणों पर छा गई है। अपने एक लोकप्रिय पद में वे कहती हैं:

अँसुवन जल सींचि सींचि, प्रेम बेलि बोई।

अब तो बेल फैल गई, आणंद फल होई॥⁷¹

प्रभु से मिलाप के मीराबाई के गीत मधुर भावनाओं से परिपूर्ण हैं। उनकी प्रफुल्लता और गहनता उनकी भक्ति की कोमलता का पुट पाकर वे और भी चित्ताकर्षक हो गए हैं। एक पद में मीराबाई वर्षा ऋतु में प्रकृति के हरे-भरे होने और सूखे सरोवरों के भर जाने का आधार लेकर प्रभु-मिलाप के अपने आनंद का वर्णन करती हुई कहती हैं कि मेह अब चाहे कितना ही बरसता रहे, मुझे चिंता नहीं क्योंकि आज प्रियतम मेरे घर आए हुए हैं। आकाश में मेघ घिर आए हैं और नन्हीं-नन्हीं बूँदें बरस

रही हैं। गर्मी की तपन से सूखे हुए सरोवर भर गए हैं। इसी प्रकार बहुत दिनों की विरह-ताप के बाद मैंने अपने प्रियतम को पाया है। अब मुझे केवल उनसे फिर बिछुड़ जाने का भय है।

मेहा बरसवो करे रे, आज तो रमैयो मेरे घरे रे।
नान्हीं नान्हीं बूँद मेघ घन बरसे, सूखे सरवर भरे रे॥
बहुत दिनाँ पे प्रीतम पायो, बिछुड़न को मोहिं डर रे।
मीराँ कहे अति नेह जुड़ायो, मैं लियो पुरबलो बर रे॥⁷²

इसी प्रकार एक सरल किंतु भावपूर्ण गुजराती पद में मीराबाई अपने प्रेम की अनन्यता इस प्रकार प्रकट करती हैं, “मेरे प्यारे प्रभु ने आज मुझे हृदय से लगा लिया है, अब मैं एक पल के लिए भी उनसे अलग नहीं होऊँगी। प्रभु को मैंने स्नेह के बंधन में बाँध लिया है और अब मैं प्रेमपूर्वक उन्हीं का गुणगान करूँगी। अपने नाथ के सुंदर नयनों पर मैं तो बार-बार वारी जाती हूँ; अपने प्रियतम पर मैं बार-बार बलिहारी जाती हूँ, उन पर मैं अपना सर्वस्व न्योछावर करती हूँ”:

मारा नाथनां नैणाँ ऊपर रे हुं। तो घड़ीये वारी जावूँ।
घड़ीये वारी जावूँ वालिड़ा हुं। तो घड़ीये वारी जावूँ॥
प्रभुजी मने कंठे वलग्या। पलकोरे न थावूँ।
शामला साथे स्नेह बंधाणो। हेते हरि गुण गावूँ॥⁷³

प्रेम अतिरेक और विरह की तीव्रता ने मीराबाई के पदों को अत्यंत मर्मस्पर्शी बना दिया है। मिलाप के आनंद और वियोग की जिस पीड़ा की अभिव्यक्ति मीराबाई ने की है, वह कवि कल्पना की उड़ान नहीं है और न ही काव्य-सौंदर्य का कोई कृत्रिम प्रयास है। उनके पद उनके अपने अनुभव हैं, अपने आप-बीते सुख-दुःख के वृत्तांत हैं, उनकी अपनी आंतरिक भावनाओं का अनायास उद्गार हैं। उनके काव्य की गहनता और साथ ही अनूठी सरलता केवल हृदय-स्पर्शी ही नहीं, प्रेरक भी है। अपने इन गुणों के लिए उनका अपने समकालीन भक्त कवियों में बहुत ऊँचा स्थान है।

उनके विरह के पद भक्तों में ही नहीं, घर-घर में लोकप्रिय हैं। भावनाओं की गहराई के साथ-साथ वाणी के लालित्य ने उनके काव्य को अत्यंत प्रभावशाली बना दिया है। ये विशेषताएँ मीराबाई के सभी पदों में मिलती हैं।

अपने एक मधुर पद में मीराबाई कहती हैं, “प्रियतम की मनोहर छवि मेरे हृदय में तीर की भाँति चुभकर समा गई है। अपने प्रियतम के बिना मैं इन प्राणों को कैसे रख सकूँगी, क्योंकि प्रियतम ही मेरे जीवन की रक्षा करनेवाले अथवा विरह-ताप को दूर करनेवाली जड़ी हैं। मीराबाई कहती हैं कि मैं अपने प्रभु के हाथों बिक चुकी हूँ अर्थात् अपना सबकुछ उनके चरणों पर न्योछावर कर चुकी हूँ। जब से मेरे स्वामी ने मुझे अपने दर्शन प्रदान किए हैं तब से उन्हीं को देखते रहने की लालसा मेरे नेत्रों की टेव (आदत) ही हो गई”:

नैणा मोरे बाण पड़ी, साँई मोहि दरस दिखाई। (टेर)
चित चढ़ी मेरे माधुरी मूरत, उर बिच आन अड़ी॥
कैसे प्राण पिया बिन राखूँ, जीवण मूर जड़ी॥

.....
मीराँ प्रभु के हात बिकानी, लोग कहे बिगडी॥⁷⁴

मीराबाई के पदों में विरह की वेदना का बड़ा सहज किंतु करुण वर्णन मिलता है। अपने एक प्रसिद्ध पद में वे कहती हैं कि विरह में उनकी पीड़ा ऐसी है कि न तो प्राण रहते हैं न ही निकलते हैं। ऐसी अवस्था में उन्हें चैन कैसे मिल सकता है? उनकी हालत ऐसी है मानो सूली पर उनकी सेज बिछी हुई है जिस पर आराम से सोना कैसे हो सकता है? मनुष्य के शरीर में परमात्मा दोनों आँखों के पीछे आत्मिक मंडलों में निवास करता है। जब तक आत्मा नौ द्वारों को खाली करके उस स्थान पर नहीं पहुँचती, वह प्रभु से कैसे मिल सकती है? इस भाव को व्यक्त करते हुए मीराबाई कहती हैं कि प्रियतम की सेज तो गगन-मंडल पर है और वह स्वयं धरती (अर्थात् नौ द्वारों) पर हैं; वे मिलाप के सुख को कैसे प्राप्त कर सकती हैं? गीत की टेक में मीराबाई कहती हैं कि हे सखी, मैं प्रभु के प्रेम में आत्म-विस्मृत और

दीवानी हो गई हूँ। मेरे वियोग की वेदना को कोई नहीं जानता। इसी पद में मीराबाई आगे कहती हैं कि एक घायल की अवस्था को वही जान सकता है जिसे ऐसे मर्मांतक घाव लगे हों; या वह जानता है जिसने विरहरूपी बाण से उनके हृदय को बँधा है।... जिस प्रकार एक घायल पशु वन-वन भटकता रहता है वैसे ही मीराबाई अपनी वेदना में वन-वन डोल रही हैं; उन्हें उपचार करनेवाला कोई ऐसा वैद्य न मिला जो उनकी असह्य पीड़ा को दूर कर सके। पद के अंत में मीराबाई कहती हैं कि उनकी व्यथा का अंत तो तभी होगा जब स्वयं उनके प्रियतम वैद्य के रूप में आकर उनका उपचार करेंगे:

हेरी में तो प्रेम दिवानी, मेरो दरद न जाने कोय।
 सूली ऊपर सेज हमारी, किस बिध सोना होय।
 गगन मंडल में सेज पिया की, किस बिध मिलना होय।
 घायल की गति घायल जानै, की जिन लाई होय।
 जौहर की गति जौहर जानै, की जिन जौहर होय।
 दरद की मारी बन बन डोलूं, बेद मिला नहिं कोय।
 मीरां की प्रभु पीर मिटैगी, जद बैद सांवलियां होय।⁷⁵

मीराबाई अपनी वियोग वेदना में व्याकुल हो कहती हैं, “यदि मैं जानती कि प्रेम करने में इतने दुःख का सामना करना पड़ता है तो मैं सभी को चेतावनी दे देती और कहती कि कोई प्रेम न करे”:

जौ हूं ऐसी जाणती रे वाला, प्रीत कियौं दुःख होय।
 नगर ढंढोरा फेरती रे प्रीत करो मत कोय॥⁷⁶

वियोग की कठिन पीड़ा और अपनी आहों और आँसुओं के बावजूद भी मीराबाई प्रेम के पथ को छोड़ने के लिए तैयार नहीं हैं। वे अपने सतगुरु के दर्शन के लिए, उनकी सुंदर छवि की एक झलक के लिए निरंतर तरसती और याचना करती हैं, परंतु वे हठ नहीं करती कि उनकी प्रार्थना स्वीकार की ही जाए। एक सच्चा प्रेमी, केवल वही चाहता है

जो उसके प्रियतम को भाए, वह अपने प्रियतम की इच्छा में प्रसन्न रहता है। वह अपने आप को उनकी इच्छा पर न्योछावर कर देता है। मीराबाई अपने पदों में बार-बार प्रभु से अपने सतगुरु के चरणों की शरण माँगती हैं। शरण, प्रेम का एक आवश्यक अंग है। सतगुरु से अपनी प्रार्थनाओं में वे इस संसार के भयानक सागर से पार किए जाने की याचना करती हैं, परंतु साथ ही कहती हैं यदि वे उचित समझें तो ही ऐसा करें। शरण की यह भावना मीराबाई के पदों में कई स्थानों पर मिलती है। अपने निंदकों को उत्तर देते हुए वे कहती हैं कि उन्हें गुरु के रूप में संत रविदास मिल गए हैं जिन्होंने उन्हें सच्चे ज्ञान का भेद प्रदान किया है।... अब वे अपने महान गुरु की शरण में रहेंगी और अपने मन, अहंकार आदि को लुटाकर (अर्थात् त्यागकर) उनके चरणों में नत होंगी:

गुरु मिलिया रैदासजी, दीन्ही ज्ञान की गुटकी।

.....
 परम गुराँ के सरन मैं रहस्याँ, परणाम कराँ लुटकी।⁷⁷

मीराबाई का एक लोकप्रिय पद, जिसमें वे अपने सतगुरु को ‘जोगी’ कहकर पुकारती हैं, उनके प्रेम की कोमल संवदेनशीलता के साथ ही गहरी उत्कंठा प्रकट करता है। वे कहती हैं, “हे जोगी, तू मुझे छोड़कर मत जा, मैं तेरे चरणों में गिरकर याचना करती हूँ कि तू मत जा: ‘जोगी मत जा मत जा मत जा, पाय परूँ मैं तेरी॥’⁷⁸” परंतु यदि सतगुरु उसको छोड़कर जाते ही हैं तो मीराबाई प्रार्थना करती हैं, “तेरी प्रीति और भक्ति का मार्ग मेरे लिए अनजाना और कठिन है, जाने से पहले मुझे उस पार लगा जा: ‘प्रेम-भगति को पेंडो हि न्यारो, हम कूँ गैल बता जा’।⁷⁹”

यदि गुरु के लिए यह करना भी संभव नहीं है तो मीराबाई उनके चरणों में एक और प्रार्थना करती हैं, “हे प्रभु, मैं अपने लिए अगर, चंदन आदि की चिता तैयार करती हूँ, तू जाने से पहले उसे अपने हाथ से जला जा: ‘अगर चंदन की चिता रचाऊँ, अपने हाथ जला जा’॥⁸⁰” क्योंकि मीराबाई सोचती हैं कि यदि उनके सतगुरु उन्हें छोड़कर जाते हैं तो वे

जीवित न रह सकेंगी। देह-स्वरूप सतगुरु की प्रत्यक्ष उपस्थिति में हमेशा मौजूद रहने की भावना को मीराबाई इस प्रकार प्रकट करती हैं, “जब मैं जलकर भस्म हो जाऊँ तो उस भस्म को अपने शरीर पर लगा लेना: ‘जल बल भई भस्म की ढेरी, अपने अंग लगा जा’॥⁸¹”

सच्चा प्रेम अपने व्यक्तित्व को प्रियतम के व्यक्तित्व में खो देना है, उसके साथ एक हो जाना है। परमात्मा में समा जाना ही प्रभुप्रेम का लक्ष्य है। अपने पद को समाप्त करते हुए प्रियतम के साथ एक हो जाने की उत्कंठा को प्रकट करते हुए वे कहती हैं, “हे प्रभु, कृपा करके मेरी ज्योति को अपनी ज्योति में समा ले: ‘मीराँ कहै प्रभु गिरधर नागर जोत में जोत मिला जा’॥⁸²”

अन्य संतों की तरह मीराबाई ने भी अपनी वाणी में विभिन्न भाषाओं के शब्दों और मुहावरों का प्रयोग किया है। हिंदी और गुजराती के अतिरिक्त उन्होंने ब्रज, अवधी, मारवाड़ी तथा राजस्थान की अन्य भाषाएँ, भोजपुरी, मैथिली, संस्कृत, अरबी, फ़ारसी और पंजाबी तक के शब्दों का स्वतंत्रतापूर्वक प्रयोग किया है। बंगाल में उनके गीत बहुत लोकप्रिय हैं। महाराष्ट्र में तुकाराम जैसे संत कवियों ने मीराबाई का उल्लेख बड़े आदर के साथ किया है और महाराष्ट्र के संतों तथा भक्तों की काव्यमय जीवनी लिखनेवाले कवि महीपति ने मीराबाई की प्रचुर प्रशंसा की है।

फिर भी काव्य-कौशल, छंद, मात्रा आदि की शास्त्रीयता, अलंकारों की विशद योजना और काव्य-सिद्धांत की दृष्टि से मीराबाई की गणना मध्यकालीन भारत के महान् कवियों में नहीं की जा सकती। परंतु अपने निश्छल, सहज भावावेग के लिए, अपनी स्वतः स्फूर्त, अनायास अभिव्यंजना के लिए, अपनी भव्य रचना की सरल किंतु ललित शब्दों में अभिव्यक्ति के लिए, अपने पदों की अकृत्रिम सरसता और गीतात्मकता के लिए, उपमाओं के प्रांजल तथा लावण्यमय प्रयोग के लिए, अपने गीतों की प्रेरक भावप्रवणता के लिए, अपने प्रेम की मधुर किंतु ओजस्वी व्यंजना के लिए और इन सबसे बढ़कर अपने प्रियतम से वियोग की दारुण व्यथा को मृदु करुणा के साथ ही मर्म-भेदी प्रखरता सहित अपने पदों में साकार करने के लिए मीराबाई के समकक्ष शायद ही कोई भक्त कवि आता है।

मीराबाई



के कुछ

संकलित पद

प्रभु मुझे पार उतार

मनुष्य के अपने पिछले कर्मों की बेड़ियाँ ही उसे स्थूल संसार में बाँधे रखती हैं। कर्म ही उसके जन्म-मरण के अनादि काल से चल रहे चक्कर का कारण हैं। इस दुःख-दर्द के संसार में कहीं भी सच्चा और स्थायी सुख नहीं है। मीराबाई परमात्मा से प्रार्थना करती हैं कि हे प्रभु, इस शोक और संताप के सागर से मुझे पार ले चल:

हरि मने पार उतार, नमी नमी विनती करूं छुं॥
जगत मां जन्मीने बहु दुःख देख्या, संसार शोक निवार॥
कष्ट आपे मने कर्म ना बंधन, दूर तुं कर कितारि॥
आ संसार वह्यो वह्यो जाय छे, लख चोराशी धार॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, आवागमन निवार॥¹

उलाहना

इस छोटे-से पद में मीराबाई प्रभु को उलाहना देते हुए कहती हैं कि हे प्रभु, अपने प्रेम का प्रसाद प्रदान करने के बाद तू कहाँ चला गया है! मुझे प्रेम की नाव में बिठा लेने के बाद विरह के अथाह सागर में अकेला क्यों छोड़ गया है?

प्रभुजी थें* कहाँ गया नेहड़ो लगाय॥
छोड़ गया अब कोन बिसासी†, प्रेम की बाती बलाय‡॥
विरह समँद में छोड़ गया छो, नेह की नाव चलाय॥
मीराँ के प्रभु कबरे मिलोगे, तुम बिन रह्योइ न जाय॥²

* थें=आप। † बिसासी=विश्वास को तोड़नेवाले। ‡ बलाय=जलाकर।

निवेदन

मीराबाई प्रभु से प्रार्थना करती हैं कि उन्हें संसार की यातनाओं से मुक्त किया जाए। परंतु शरण की भावना के साथ वे कहती हैं कि प्रभु उन्हें भवसागर में बहते हुए तभी बचाएँ जब उनकी उद्धार करने की इच्छा हो:

तुम सुणौ दयाल म्हाँरी अरजी॥
भवसागर में बही जात हूँ, काढो तो थाँरी मरजी॥
यो संसार सगो नहिं कोई, सांचा सगा रघुवरजी॥
मात पिता सुत कुटुंब कबीलो, सब मतलब के गरजी॥
मीराँ की प्रभु अरजी सुण लो, चरण लगावो थाँरी मरजी॥³

विरह-वेदना

विरह में व्याकुल मीराबाई प्रभु से आकर दर्शन देने की प्रार्थना करती हैं। उन्हें बिना देखे वे दिन-रात बेचैन रहती हैं। इस व्याकुलता में न उन्हें भूख लगती है और न ही वे सो पाती हैं। अपनी व्यथा व्यक्त करने के लिए उनके पास शब्द नहीं हैं; परंतु प्रभु तो अंतरयामी हैं, अतएव वे याचना करती हैं कि उनके दुःख को देखकर उनसे आकर मिलें:

प्यारे दर्शन दीजो आय, तुम बिन रह्यो न जाय। (टेर)
जल बिन कमल चंद बिन रजनी, ऐसे तुम देख्यां बिन सजनी।
आकुल ब्याकुल फिरूँ रैन दिन, विरह कलेजा खाय॥
दिवस न भूख नींद नहिं रैनां, मुख से कथन न आवै बैनां।
कहा करूँ कुछ कहत न आवै, मिल कर तपत बुझाय॥
क्यों तरसाओ अंतरजामी, आय मिलो किरपा कर स्वामी।
मीराँ दासी जनम जनम की, परी तुमारे पांय॥⁴

हरि से मिलाप कैसे हो ?

प्रभु से मिलने के लिए व्याकुल मीराबाई शिकायत करती हैं कि हे प्रभु, तूने यह कैसी रचना रची है कि मुझे अपने धाम से बहुत दूर भेज दिया है और वापस जाने के सभी मार्ग बंद हैं। तेरे देश का रास्ता ऊँचा-नीचा और रपटीला है और पद-पद पर गिरने की आशंका है। मार्ग में स्थान-स्थान पर कामना और तृष्णारूपी सिपाही बैठे हैं जो मुझे रोकते हैं। क्रदम-क्रदम पर काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकाररूपी पाँच लुटेरे ताक लगाये बैठे हैं जो मेरे परमार्थ और भक्तिरूपी धन का हरण करना चाहते हैं।

पद के अंत में मीराबाई कहती हैं कि मेरे सतगुरु ने मेरा प्रभु से साक्षात्कार करवा दिया और युगों-युगों से बिछुड़ी हुई मीराबाई को अपने धाम पहुँचा दिया:

गली तो चारों * बंद हुई, मैं हरि से मिलूँ कैसे जाय॥
ऊँची नीची राह रपटीली, पाँव नहीं ठहराय।
सोच-सोच पग धरूँ जतन से, बार-बार डिग जाय॥
ऊँचा नीचा महल पिया का, म्हाँ सूँ चढ्यो न जाय।
पिया दूर पंथ म्हाँरो झीणो, सुरत झकोला खाय॥
कोस-कोस पर पहरा बैठ्या, पैँड-पैँड† बट मार‡।
या विधना कैसी रच दीनी, दूर बसायो म्हाँरो गाँव॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सतगुरु दर्द बताय।
जुगन-जुगन से बिछड़ी मीराँ, घर में लीनी लाय॥⁵

* गली तो चारों=कुछ विद्वानों के अनुसार इन चार गलियों से मीरा का संकेत ज्ञान, योग, कर्म और वैराग्य के मार्गों से है।

† पैँड-पैँड=क्रदम-क्रदम पर। ‡ बट मार=लुटेरे अथवा डाकू।

ज्योति में ज्योति मिली

यह पद एक विरहिणी आत्मा की प्रभु से मिलाप की याचना है। पद के अंत में मीराबाई कहती हैं कि जब उन्हें अपने सतगुरु रविदास मिले और उन्होंने मार्ग बताया तो वे प्रभु से मिल गईं। उनकी आत्मारूपी ज्योति परमात्मारूपी ज्योति में समाकर एक हो गई:

तुम पलक उघाड़ो दीनानाथ, हूँ हाजिर नाजिर कबकी
खड़ी। टेक।
साऊ* थे दुसमण होइ लागे, सब ने लगूँ कड़ी†।
तुम बिन साऊ कोऊ नहीं है, डिगी नाव मेरी समंद अड़ी॥
दिन नहिं चैन रात नहिं निदरा, सूखूँ खड़ी खड़ी।
बान बिरह के लगे हिये में, भूलूँ न एक घड़ी॥
पत्थर की तो अहिल्या तारी, बन के बीच पड़ी।
कहा बोझ मीरा में कहिये, सौ ऊपर एक धड़ी‡॥
गुरु रैदास मिले मोहिं पूरे, धुर से कलम भिड़ी§।
सतगुरु सैन दई¶ जब आ के, जोत में जोत रली॥⁶

निद्रा-विहीन रातें

भक्त के वियोग की व्यथा का वर्णन करते हुए मीराबाई कहती हैं कि इस पीड़ा को केवल वही जान सकता है जो खुद प्रभु के वियोग में दुःखी हो:

* साऊ=साथी अथवा मित्र। † कड़ी=कटु, कड़वी। ‡ धड़ी=पाँच सेर का बाट।
§ धुर...भिड़ी=परमात्मा ने अपनी कलम से मेरे माथे पर लिख दिया है।
¶ सैन दई=आंतरिक मार्ग का संकेत दिया।

नींदइली नहिं आवै सारी रात, किस विधौ* होय परभात॥
चमक उठी सपने सुध भूली, चंद्रकला न सोहात।
तलफ तलफ जिव जाय हमारो, कब रे मिले दीनानाथ॥
भई हूँ दिवानी तन सुध भूली, कोई न जानी म्हारी बात।
मीराँ कहै बीती सोई जानै, मरण जीवण उन हाथ॥⁷

नाम का सुमिरन

प्रभु के नाम का निरंतर सुमिरन करने की प्रेरणा देते हुए मीराबाई कहती हैं कि नाम मन को निर्मल करता है, पापों का नाश करता है और जन्मों-जन्मों के कर्मों के लेखे को नष्ट करता है जो आत्मा को बार-बार इस संसार में आने पर बाध्य करते हैं। नामरूपी अमृत संतों द्वारा मुफ्त में दिया जा रहा है, उसे पीने में मनुष्य को आनाकानी नहीं करनी चाहिए:

मेरो मन राम हि राम रटै रे। (टेक)
राम नाम जप लीजै प्राणी, कोटिक पाप कटै रे॥
जनम जनम के खत जु पुराने, नाम हि लेत फटै रे॥
कनक कटोरे अमृत भरियो, पीवत कौन नटै रे॥
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, तन मन ताहि पटै रे†॥⁸

पचरंग चोला

किसी छोटी लड़की को जब नए कपड़े पहनाए जाते हैं तो उन्हें दिखाने के लिए वह अपनी सहेलियों के पास दौड़ी जाती है, जो गाँव के झुरमुट अथवा झाड़ियों में खेल रही हैं। उनका प्रिय खेल लुका-छिपी होता है। वह भी

* विधौ=किस विधि अथवा उपाय से।

† तन...रे=तन और मन की अविनाशी प्रभु से ही पटती है अर्थात् तन-मन उसी में रँग गया है।

उनके खेल में शामिल हो जाती है, परंतु जब उसकी पकड़ने की बारी आती है, तब वह देखती है कि उसकी ओढ़नी उसके दौड़ने में बाधक है तो उसे उतार देती है और दौड़कर अपनी छिपी हुई सखी को ढूँढ़ लेती है।

आत्मा की आंतरिक मंडलों में यात्रा का संकेत मीराबाई यहाँ छोटी लड़की के रूपक के द्वारा दे रही हैं। पाँच आंतरिक धुनों के रंग में रंगे हुए वस्त्र धारण करके आत्मा आँखों के केंद्ररूपी झुरमुट में खेलने जाती है। कर्मकांड तथा बाहरमुखी उपासना के वस्त्र, जो अंदर जाने के मार्ग में रुकावट हैं, वह उतार देती है और अपने गुरु को ढूँढ़ने में सफल हो जाती है। पद में मीराबाई अपने आंतरिक अनुभवों का वर्णन करते हुए कहती हैं कि पवन, पानी आदि पाँचों तत्त्व और सूर्य, चंद्र और तारा-मंडल पीछे रह जाएँगे तथा आत्मा और ऊँचे रूहानी मंडलों में गमन करेगी। मीराबाई यह भी स्पष्ट करती हैं कि परमात्मा का निवास मनुष्य-शरीर के अंदर है और वह प्रेम के दीपक के प्रकाश से अंदर ही प्रकट होता है:

सखी री मैं तो गिरधर के रँग राती॥ टेक॥
पचरँग मेरा चोला रँग दे, मैं झुरमट खेलन जाती।
झुरमट में मेरा साई मिलेगा, खोल अडम्बर गाती॥
चंदा जायगा सुरज जायगा, जायगा धरण अकासी।
पवन पाणी दोनों ही जायँगे, अटल रहे अबिनासी॥
सुरत निरत* का दिवला सँजो ले, मनसा की कर बाती।
प्रेम हटी† का तेल बना ले, जगा करे दिन राती॥
जिन के पिय परदेस बसत हैं, लिखि लिखि भेजें पाती।
मेरे पिय मो माहिं बसत हैं, कहूँ न आती जाती॥
पीहर बसूँ न बसूँ सास घर, सतगुरु सब्द सँगाती।
ना घर मेरा ना घर तेरा, मीरा हरि रँग राती॥⁹

* सुरत निरत=आत्मा की (आंतरिक मंडलों में) सुनने की शक्ति को सुरत तथा देखने की शक्ति को निरत कहते हैं। † हटी=दुकान।

दिन थोड़ा रे

दीर्घकाल के अंधकार के बाद मनुष्य-जन्मरूपी दिन का उदय हुआ है। यह जीव के लिए प्रभु को प्राप्त करने का अवसर है और उसे चाहिए कि इसका लाभ उठाए। उसे संसार की अन्य चिंताओं को छोड़कर दिन रहते-रहते प्रभु की नगरी में वापस पहुँच जाने की ही चिंता करनी चाहिए। पद के अंत में मीराबाई कहती हैं कि प्रभु की कृपा से उन्हें वह मार्ग मिला है जो सबसे नज़दीक है:

अब क्यों करे रे मूर्ख मोड़ो* रे,
बटाऊ (पंथी) वाट घणी† दिन थोड़ो रे॥
उगोरे सूरज पूरब, घर पुगो‡ तो, दोड़ सके तो दोड़ो रे॥
करलो किमत§ हिमत मति हारो, कर चिंता पिछे दोड़ो रे॥
नगर पुछ्यां॥ निरभे होसी, बीच रमण के फोड़ो रे**॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, मार्ग म्हाने मिल्यो नेड़ो रे††॥¹⁰

अलौकिक खिलौना

जब किसी बच्चे को कोई सुंदर खिलौना मिल जाता है, तो उसका खयाल खिलौने में ही लगा रहता है। इसी उदाहरण को लेते हुए मीराबाई कहती हैं कि उन्हें राम-नामरूपी अनुपम खिलौना मिल गया है। इसे उन्होंने अपने शरीररूपी मंदिर में पाया है और यह मधुर ध्वनि करता हुआ आया है। बड़े-बड़े ऋषि, मुनि, योगी आदि जप, तप, संयम और कठिन साधन कर-कर के थक गए

* मोड़ो=मूर्ख। † वाट घणी=मार्ग लंबा है। ‡ पुगो=पहुँचो।

§ किमत=मनुष्य-जन्म के इस अवसर की क्रीमत करो। ¶ पुछ्याँ=पहुँचने पर।

**बीच...रे=मार्ग के रमणीक दृश्यों में रम जाना कष्ट का कारण होगा।

††नेड़ो रे=नज़दीक का।

परंतु उन्हें यह विलक्षण खिलौना न मिल सका। यह केवल मन और माया की सीमा से परे सुन्न-मंडल में ही मिल सकता है। नामरूपी यह खिलौना, जिसे सब लोग 'अगम' और 'अगोचर' कहते हैं, मीराबाई को अपनी भक्ति के फलस्वरूप प्राप्त हुआ है और अब वे उसी में लीन रहती हैं:

राम रमकडुं जडियुं रे, राणा जी,
मने राम रमकडुं जडियुं॥
रुमझुम करतुं मारे मंदिरे पधार्युं,
नहिं कोइने हाथे घडियुं रे॥
मोटा मोटा मुनिजन मथी मथी थाक्या,
कोई एक विरला ने हाथे चडियुं रे॥
सुन शिखर ना रे घाटथी ऊपर,
अगम अगोचर नाम पडियुं रे॥
बाई मीरां के प्रभु गिरधर नागर,
मारूँ मन शामलियाशुं जडियुं रे॥^{*11}

(ऊपर दिए गुजराती पद का हिंदी अनुवाद)

राम खिलौना मिलयो राणा जी,
मुझे राम खिलौना मिलयो रे।
रुनझुन करता मेरे मंदिर आया,
न किसी ने हाथों घड़ियो रे॥
ऋषिवर मुनिवर दूँढ़त थाके,
विरले के हाथ वह लगयो रे॥
सुन मंडल के परे मिले वह,
नाम अगम अगोचर पड़यो रे॥

* यह मीराबाई का एक गुजराती पद है, जिसका भावार्थ ऊपर दिया गया है।

मीरा के प्रभु गिरधर नागर,
मन श्यामसुंदर से जुड़यो रे॥

संतों हाथ बिकानी

मीराबाई की ननद ऊदाबाई राणा के कहने से मीराबाई को समझाती है कि वे संतों की संगति छोड़ दें। उत्तर में मीराबाई कहती हैं कि संत ही उनके माता, पिता, सज्जन और स्नेही हैं। उन्होंने संतों की शरण ले ली है और अपना तन, मन, धन उनके चरणों में न्योछावर कर दिया है:

मीराँ बात नहीं जग छानी, * उदा बाई समझो सुघर सयानी॥
साधू मात पिता कुल मेरे, सजन सनेही ज्ञानी।
सन्त चरण की सरण रैन दिन, सत्य कहत हूँ बानी॥
राणा ने समझावो जावो, मैं तो बात न मानी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, संतां हाथ बिकानी॥¹²

जोगी अजहूँ आयो नाहिं

मीराबाई ने जोगी को संबोधित करते हुए कई पद लिखे हैं। इनमें से अधिकांश पद उस व्यक्ति के प्रति प्रेम और विरह को व्यक्त करते हैं जिसे मीराबाई ने 'जोगी' कहा है। कुछ विद्वानों का मत है कि ये पद प्रभु को संबोधित करते हुए कहे गए हैं, जिसे मीराबाई ने अपने प्रेम में 'जोगी' कहकर पुकारा है।

किसी समय राजस्थान में प्रायः प्रत्येक साधु और महात्मा को जोगी कहकर पुकारा जाता था। आज भी राजस्थान के कुछ ग्रामीण भागों में सभी प्रकार के महात्माओं को लोग जोगी कहते हैं। यहाँ प्रस्तुत तीनों

* छानी=छिपी हुई।

पदों से यह स्पष्ट प्रकट होता है कि मीराबाई किसी ऐसे व्यक्ति के दर्शन के लिए व्याकुल हैं जिसे वे देह-स्वरूप में मिल चुकी हैं। पहले पद में मीराबाई यह संदेह प्रकट करती हैं कि या तो जोगी उन्हें भुला चुका है या वह इस संसार में अब जीवित नहीं है। दूसरे पद में वे कहती हैं कि जोगी जैसा सुंदर मुख उन्होंने इस संसार में दोबारा कहीं नहीं देखा है। तीसरे पद में मीराबाई बताती हैं कि वे जोगी की तलाश में जगह-जगह भटकती फिरीं पर उसके दर्शन नहीं हुए; इसी तरह खोजते-खोजते वे वृद्धावस्था को प्राप्त हो गई हैं और उनके काले केश श्वेत हो गए हैं।

इस निष्कर्ष पर पहुँचना शायद गलत न होगा कि मीराबाई का यह गहरा प्रेम और विरह उनके गुरु रविदास के प्रति है, जिसे उन्होंने जोगी कहकर पुकारा है। संतमत में सतगुरु के प्रति अपार भक्ति और प्रेम, प्रभु-प्राप्ति की ओर ले जानेवाली सीढ़ी है:

जोगिया जी निसदिन जोऊं बाट।

पांव न चाले पंथ दुहेलो, आड़ा औघट घाट। (टेर)

नगर आइ जोगी रम गया रे, मो मन प्रीत न पाइ।

में भोली भोलापण कीन्हो, राख्यौ नहीं बिलमाइ* ॥

जोगिया कूँ जोवत† दिन बीत्या, अजहूँ आयो नांहिं ॥

विरह बुझावण अन्तरि आवो, तपत लगी तन मांहिं ॥

कै तो जोगी जग में नाहीं, कै 'र बिसारी मोइ।

काँई करूँ कित जाऊँ री सजनी, नैण गुमाया रोइ ॥

आरति तेरी अंतरि मेरे, आवो अपणी जाण।

मीराँ ब्याकुल विरहिणी रे, तुम बिन तलफत प्राण ॥¹³

जोगिया सौँ प्रीत कियौँ दुख होय। (टेर)

प्रीत कियौँ सुख नहिं मोरी सजनी, जोगी मीत न कोई।

* बिलमाइ=प्रेम में बाँधकर रोकना। † जोवत=बाट जोहते हुए।

रात दिवस कल नाहिं परत है, तुम मिलियाँ बिन मोई ॥

ऐसी सूरत या जग माहीं, फेरि न देखी सोई।

मीराँ के प्रभु कब रे मिलोगे, मिलियाँ आनँद होई ॥¹⁴

जोगी म्हाँने दरस दियाँ सुख होइ ॥

नातरि* दुखी जग माहिं जीवड़ो, निस दिन झूरै तोइ ॥

दरस दिवानी भई बावरी, डोली सब ही देस ॥

मीराँ दासी भई है पंडर†, पलट्या काला केस ॥¹⁵

दृढ़ निश्चय

प्रस्तुत पद में मीराबाई संतों की संगति में रहने का दृढ़ निश्चय प्रकट करती हैं। धन, यश और सांसारिक सुखों को वे तिलांजलि देने के लिए तैयार हैं; दिव्य प्रेम को प्राप्त करने के लिए वे अपना शीश तक भेंट करने से न हटेंगी। उनका मन सुमिरन में लगा हुआ है और वे अपने अविनाशी प्रभु से यही याचना करती हैं कि उन्हें सतगुरु की शरण प्राप्त हो:

बरजी‡ मैं काहू की नाँहि रहूँ ॥

सुणो री सखी तुम चेतन होय कै, मन की बात कहूँ ॥

साध-सँगति कर हरि-सुख लेऊँ, जग सूँ दूर रहूँ।

तन धन मेरो सबही जावो, मेरो सीस लहूँ ॥

मन मेरो लागो सुमरण सेती, सबका मैं बोल सहूँ।

मीराँ के प्रभु हरि अबिनासी, सतगुरु सरण गहूँ ॥¹⁶

* नातरि=नहीं तो अर्थात् दर्शन न पाने पर।

† पंडर=पीली अर्थात् वृद्धावस्था के कारण क्षीण।

‡ बरजी=रोकने पर अथवा मना करने पर।

मैं प्रभु पाया जी

मीराबाई ने प्रभु-मिलाप के आनंद को व्यक्त करते हुए कई पद रचे हैं। यद्यपि उनके विरह के गीत अधिक लोकप्रिय हैं, फिर भी मिलन के गीत भावों की गहराई और माधुर्य में कुछ कम नहीं हैं। इस पद में मीराबाई अपने प्रियतम के घर आने की प्रसन्नता का वर्णन करते हुए कहती हैं कि प्रभु को अपने घर में पाकर उनकी विरहाग्नि शांत हो गई तथा वियोग का दुःख और द्वैत समाप्त हो गया:

म्हारा ओलगिया* घर आया जी। (टेक)
तन की ताप मिटी सुख पाया, हिल-मिल मंगल गाया जी॥
घन की धुनि सुनि मोर मगन भया, यूँ मेरे आणद आया जी॥
मगन भई मिलि प्रभु अपना सूँ, भौ का दरद मिटाया जी॥
चंद कूँ देखि कमोदणि फूलै, हरखि भया मेरी काया जी॥
रग रग सीतल भई मेरी सजनी, हरि मेरे महल सिधाया जी॥
सब भगतन का कारज कीन्हा, सोई प्रभु मैं पाया जी॥
मीराँ बिरहणि सीतल होई, दुख दुन्द† दूरि न्हासाया जी॥¹⁷

सूरमा

मीराबाई भक्त को प्रेरणा देती हैं कि वह अपनी भक्ति और आत्मिक अभ्यास में दृढ़तापूर्वक लगा रहे। जिस प्रकार एक वीर योद्धा भाला, तलवार, ढाल आदि से सुसज्जित होकर युद्ध-भूमि में विजय-प्राप्ति के निश्चय के साथ उतरता है, उसी प्रकार भक्त को दृढ़ता, साहस और लगन के

* ओलगिया=वह प्रियजन जो विदेश चला गया हो और जिसके आने की आस हो।

† दुख दुन्द=सुख-दुःख, हर्ष-शोक आदि द्वंद्व; द्वैतभाव।

साथ अपने अभ्यास में जुट जाना चाहिए। उसकी भक्ति—उसका सतगुरु, उसकी ढाल—सतगुरु की रक्षा का हाथ और उसकी तलवार—उनकी कृपा है। उसे विश्वास और दृढ़ता के साथ भजनरूपी संग्राम में प्रवृत्त होकर अपने ध्येय अर्थात् प्रभु को प्राप्त करना चाहिए:

लग रहना, लग रहना, हरि भजन
में लग रहना, लग रहना॥
साहेब का घर दूर है रे, जैसी लगी खजूर।
चढ़े सो चाखे प्रेम रस, पड़े तो चकनाचूर॥
क्या बख्तर का पहरना रे, क्या ढालों की ओथ*।
सूरा पूरे का पारखा रे, लड़े धणी के जोर॥†
ज्ञान कटारी बड़ी रे, गुरु गोविन्द तलवार।
वैराग्य रूपी भाला बांध ले, कबहुँ न होवे हार॥
हाड चाम की देह बनी रे, नव नाड़ी दश कोर‡।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, लगी राम सों डोर॥¹⁸

प्रभु तू रुष्ट क्यों है ?

दर्शन के लिए व्याकुल मीराबाई मन में आशंकित हैं कि शायद प्रभु उनसे रुष्ट है। वे पूछती हैं कि हे प्रभु, मेरे असंख्य अवगुणों में से वह कौन-सा अवगुण है, वह कौन-सा गुनाह है जिसके लिए तू मुझसे नाराज़ होकर दर्शन देने में विलंब कर रहा है। हे करुणामय, मुझसे अप्रसन्न होकर तुझे भी अवश्य दुःख हो रहा होगा। तू तो दुःखी न हो, मुझे दर्शन दे, मुझे तो तेरे ही नाम की रट लगी है:

* ओथ=ओट।

† सूरा...जोर=सच्चे सूरमारूपी भक्त की यही परख है कि वह अपने स्वामी की शक्ति का आसरा लेकर अभ्यास करता है। ‡ दश कोर=दस इंद्रियाँ।

गिरधर रूसणूं जी कोण गुन्हां। (टेर)
 कछु इक ओगुण काढो म्हांमै, म्हे भी कानां सुणां॥
 में तो दासी थारी जनम जनम की, थे साहिब सुगणां*॥
 काई बातसूं कर्यो रूसणूं, क्यों दुख पावो छो मनां॥
 किरपा करि मोहि दरसण दीज्यो, बीते दिवस घणां॥
 मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, थारो ही नांव भणां†॥¹⁹

प्रभु कब रै मिलोगे ?

यह पद अपने प्रियतम प्रभु के वियोग में मीराबाई की विरह-वेदना को प्रकट करता है। वे अपने दुःख में शिकायत करती हैं कि प्रियतम न तो स्वयं आते हैं, न आने का कोई संदेश भेजते हैं, उन्हें तो उनको तरसाने की आदत ही पड़ गई है:

कोई कहियौ रे प्रभु आवन की, आवन की मन भावन की। (टेर)
 आप न आवै लिख नहिं भेजै, बाँण‡ पड़ी ललचावन की॥
 ए दोई नैण कछो नहिं मानै, नदियाँ बहै जैसे सांवन की॥
 कहा करूँ कछु नहिं बस मेरो, पाँख नहीं उड़ जावन की॥
 मीराँ कहै प्रभु कब रै मिलोगे, चेरी भई हूँ तेरे दावन§ की॥²⁰

घट का दर्पण

यह मीराबाई के आत्म-कथात्मक पदों में से एक है, जिससे प्रकट होता है कि वे किस प्रकार राणा द्वारा प्रस्तुत की गई बाधाओं तथा लोक-निंदा की परवाह न करते हुए भक्तिमार्ग पर दृढ़ रहीं। वे कहती हैं कि सतगुरु

* सुगणां=गुण-संपन्न। † भणां=पुकारती हूँ। ‡ बाँण=आदत।
 § दावन=युक्ति, ढंग, कुछ विद्वानों ने 'दाँवन' का अर्थ दामन भी किया है।

ने उन्हें अपने शरीर के अंदर का दर्पण दिखा दिया है अर्थात् आंतरिक आत्मिक मंडलों के दृश्य प्रकट कर दिए हैं। उनका सुहाग अर्थात् पतिरूपी परमेश्वर प्रकट हो गया है। मीराबाई कहती हैं कि घट के अंदर के इस भेद को हर कोई नहीं जानता:

राणाजी हूं अब न रहूँगी तोरी हटकी*॥
 साध संग मोहि प्यारा लागै, लाज गई घूँघट की॥
 पीहर मेड़ता छोड़ा अपना, सुरत निरत दोउ चटकी†।
 सतगुरु मुकर‡ दिखाया घट का, नाचूंगी दे दे चुटकी॥
 हार सिंगार सभी ल्यो अपना, चूड़ी करकी पटकी॥
 मेरा सुहाग अब मोकूँ दरसा, और न जाने घट की॥
 महल किला राणा मोहिं न चाये, सारी रेसम पट की॥
 हुई दिवानी मीराँ डोलै, केस लटा सब छिटकी॥²¹

प्रेम का उलाहना

प्रभु पर निष्ठुरता का आरोप लगाते हुए मीराबाई कहती हैं कि उन्होंने अपने निर्मोही प्रभु की प्रीति को देख लिया है। उनके हृदय में प्रेम की लौ जगाकर अब उन्होंने उलटी रीति अपनाकर उन्हें वियोग की व्यथा दे दी है। यह प्रेम का कौन-सा ढंग है कि पहले मिलनरूपी अमृत देकर अब विछोह के विष का प्याला पिला रहे हैं! पद के अंत में वे कहती हैं कि हे प्रभु, आप तो सबके स्वामी हैं, आप भी साधारण संसारियों की तरह 'गरज के मीत' क्यों बन गए? उलाहने के कटु शब्दों के पीछे उनके प्रेम की गीतिमय कोमलता इस पूरे पद में व्याप्त है:

* हटकी=रोकी हुई। † चटकी=खिल गई अर्थात् जाग्रत हो गई।
 ‡ मुकर=दर्पण।

जाओ हरि निरमोहिआ, जाणी थाँरी प्रीत॥
 लगन लगी जद प्रीत और ही, अब कुछ अँवली* रीत॥
 इमरत† पाइ के विष क्यूँ दीजै, कूँण‡ गाँव की रीत॥
 मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, अपणी गरज के मीत॥²²

जो मैं साहिब पाऊँ

इस छोटे-से पद में मीराबाई कहती हैं कि एक बार यदि प्रभु सामने आ जाएँ तो अपने नयनों से वे उन्हें निरंतर निहारती रहेंगी। आंतरिक आत्मिक मंडलों की यात्रा का संकेत करते हुए वे कहती हैं कि त्रिकुटी के शिखर से वे प्रभु की ओर टकटकी लगाएँगी और ऊपर जाकर तीसरे स्थान अर्थात् सुन्न मंडल में अपनी सुरत अथवा आत्मा को स्थिर करेंगी:

नैनन बनज§ बसाऊँ री, जो मैं साहिब पाऊँ री। (टेर)
 इन नैनन मेरा साहिब बसता, डरती पलक न नाँऊँ॥ री॥
 त्रिकुटी महल में बना है झरोका, तहां से झाँकी लगाऊँ री॥
 सुन्न महल में सुरत जमाऊँ, सुख की सेज बिछाऊँ री॥
 मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, बार बार बलि जाऊँ री॥²³

और देव न जानूँ

विभिन्न देवी-देवताओं की उपासना, गंगा, जमुना आदि नदियों में स्नान और प्रयाग, काशी आदि तीर्थों की यात्रा का खंडन करते हुए मीराबाई

* अँवली=उलटी। † इमरत=अमृत। ‡ कूँण=कौन-से, किस।
 § बनज=व्यापार। ॥ नाँऊँ=झुकाऊँ।

कहती हैं कि वे केवल प्रभु को ही जानती हैं तथा उनके अंतर में केवल उन्हीं के दर्शन की प्यास है:

बन जाऊँ चरन की दासी रे। दासी मैं भई उदासी॥
 और देव कोई न जाणूँ। हरि बिन भई उदासी॥
 नहीं न्हावुं गंगा नहीं न्हावुं जमुना। नहीं न्हावुं प्रयाग कासी॥
 मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर। चरन कमल की प्यासी॥²⁴

तेरी शरण पड़ी

मीराबाई कहती हैं कि अनेक बाहरमुखी क्रियाओं को करके और सभी तीर्थों की यात्रा करके भी मन वश में नहीं आया। हे प्रभु, मैं अब तेरी शरण में आई हूँ, जैसे बने मुझे तार ले। इस जग में मेरा कोई नहीं है, मुझे केवल तेरा ही आसरा है:

मैं तो तेरी सरण परी रे रामाँ, ज्यूँ जाणे ज्यूँ तार। (टेर)
 अड़सठ तीरथ भ्रमि भ्रमि आयो, मन नहीं मानी हार॥
 या जग में कोई नहीं अपणाँ, सुनियौ श्रवन मुरार॥
 मीराँ दासी राम भरोसे, जम का फंद निवार॥²⁵

लागी लगन

मीराबाई गुरु के प्रति अपने प्रेम और उनके दर्शन की कामना को व्यक्त करते हुए कहती हैं कि उन्हें गुरु-चरणों के सिवाय कुछ भी अच्छा नहीं लगता। गुरु की कृपा से संसार की माया उन्हें स्वप्न के समान अर्थहीन लगती है और संसाररूपी भयानक सागर उनके लिए सूख गया है। अब उन्हें तरने की कोई चिंता नहीं है। उन्हें केवल गुरु-दर्शन

की आस है और वे प्रभु से याचना करती हैं कि उन्हें गुरु की शरण प्राप्त हो:

मोहे लागी लगन गुरु-चरन की। (टेक)

चरन बिना कछुवै* नहीं भावै, जग-माया सब सपन की॥

भवसागर सब सूखि गयौ है, फिकर नहीं मोहि तरन की॥

मीरा के प्रभु गिरधरनागर, आस वही गुरु-सरन की॥²⁶

जो घन के घाव सहे

प्रभु के प्रेमियों को सदा ही दुनियादारों द्वारा निंदा और निरादर सहना पड़ता रहा है। मीराबाई के अपने जीवन की भी यही गाथा रही है। इस गुजराती पद में वे संतों की गंभीरता और सहिष्णुता का संकेत करते हुए कहती हैं कि संत अथवा सच्चे भक्त असली हीरे के समान घन की चोट सहकर भी अपनी स्थिरता और आत्मिक उज्ज्वलता नहीं खोते। पद का भावार्थ इस प्रकार है: कोई कितने ही निंदा या ताने के शब्द कहे उसे कहने दो, हमें प्रभु की भक्ति से डिगना नहीं चाहिए। संसारी और भक्त दोनों अलग-अलग होते हुए भी संसार में साथ ही रहते हैं। इनमें से सच्चा भक्त अथवा संत हम किसे कहेंगे? सच्चा भक्त उसी को समझो जो सबके तानों और कटु-वचनों को शांतिपूर्वक सहे। हीरे और कंकर यदि ऊपर से एक ही रूप और रंग के दिखाई दें तो हम असली हीरे को कैसे पहचानेंगे? असली हीरा उसे ही जानो जो घन की अनेक चोटें खाने पर भी अपना रूप और ज्योति नहीं खोता। मीराबाई कहती हैं कि प्रभु के चरणकमलों को अपने हृदय में बसाए रखो:

कोई कहे तेने कहेवा रे दर्ईसे, आपणे हरि भजन मां रहीसे रे॥

उगत भगत बे जुदा बसे छे, तेमां भक्तपणुं कोने कहीसे रे।

* कछुवै=कुछ भी।

भक्तपणुं तब जाणीए आपण, सौनां मेणां (बोल) सहीसे रे॥

हीरा ने कंकर एकज रंगा, तेमां हीरापण कोनी कहीसे रे।

हीरापणुं तब जाणीए आपण, घाव घणोरा सहीसे रे॥

बाई मीरा के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल पर चित दर्ईसे रे॥²⁷

प्रेम में पागल

भक्तों और प्रेमियों को सांसारिक लोग पागल समझते हैं। प्रेमी प्रभु की याद में निरंतर लीन रहते हैं, उनकी आंतरिक अवस्था को साधारण लोग नहीं समझ सकते। ऐसे प्रेमियों की देखभाल प्रभु स्वयं करता है और उनके सभी कार्य सँवारता है। मीराबाई कहती हैं कि ऐसी प्रीति उत्पन्न करना ही मनुष्य-जन्म का उद्देश्य है और यदि यह पूर्ण हो जाए तो और कुछ करना बाक़ी नहीं रहता।

पद का भावार्थ: “पागल? हाँ, मैं पागल हूँ, परंतु इस पागलपन में ही मुझे प्रभु का प्रेमरूपी लाभ प्राप्त हुआ है। पिछले असंख्य युगों से मैं सत्य को न जान सकी और मेरा मन माया के बंधनों में फँसा रहा। मैं भवसागर में पड़ी भटक रही थी कि प्रभु स्वयं ही मेरे मार्ग में आकर मुझसे मिले। यदि मैं पागल हूँ तो हरि के प्रेम में ही पागल हूँ, मेरी इस अवस्था को दुनियादार क्या जान सकते हैं! जो आनंद देवी-देवताओं को भी दुर्लभ है, उस आनंद का अनुभव यह पागल नित्य करती है। मुझे तो मेरे प्रभु ने ही अपने प्रेम में पागल किया है; मेरे स्वामी ने ही मुझे इस पागलपन के द्वारा निर्मल कर दिया है। मेरे पिछले जन्मों के संस्कार और प्रेम के कारण ही प्रभु ने मुझे अपना हाथ बढ़ाकर अपनाया है। हे सांसारिक लोगो, तुम मुझे पागल-पागल क्या कहते हो, इस पागल के तो सभी कार्य प्रभु ही संपूर्ण करते हैं। जिन्हें संसार के सुख, दुःखों के समान प्रतीत होते हैं ऐसे लोग मर कैसे सकते हैं? अर्थात् वे तो जीते-जी मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेते हैं। इस पागल को तो संतों के चरणों की सेवा के सिवाय और कुछ नहीं आता।” मीराबाई कहती हैं कि अपने पागलपन में उन्होंने प्रभु को प्राप्त

कर लिया है, उनके सभी कार्य संपूर्ण हो गए हैं और उन्हें अपने ध्येय की प्राप्ति हो गई है:

घेलां, अमे घेलां रे, अमने घेलां मां गुण लाध्यो॥
आगे तो अमे कांड न जाण्युं, मन माया मां बांध्युं।
भवसागर मां भुला पडीयां, मारग मलीया माधुं॥
घेलां तो अमे हरीनां घेलां, दुरजनीया शुं जाणे।
जे रस देवी देव ने दुर्लभ, ते रस घेलां माणे॥
घेलां तो अमने हरीए कीधां, निरमल कीधां नाथे।
पुरब जनम नी प्रीतलडी अमने, हरीए झाल्यां हाथे॥
घेलां घेलां तमे शुं करो, घेलानुं काम हरि करशे।
सुखनुं केतां दुःखज लागे, ते नर क्यांथी मरशे॥
घेलां तो अमे कांड न जाणतां, साधु चरणों सेव्यां।
मीराँ कहे प्रभु गीरधरना, गुण समजे कारज सीध्यां॥²⁸

(ऊपर दिए गुजराती पद का हिंदी अनुवाद)

पगली हूँ हाँ पगली रे, पगली थी तो लाभ हुआ॥
पहले तो मैं कुछ न जाना, मन माया ने बांध्यो।
भवसागर में भटक रही थी, पथ में आ मिले माधो॥
पगली तो हरि प्रेम की पगली, दुनियादार क्या जाने।
जो देवी-देवों को दुर्लभ, सो रस पगली जाने॥
पगली बनाया जिसने मुझको, मल धोया उस नाथ ने।
जनम जनम की प्रीत हरि से, हरि पकड़या हाथ रे॥
पगली पगली क्या करते तुम, पगली का काम हरि करते।
सुख कहें जिस को दुख वह मुझको, ऐसे पागल कहाँ मरते।
पगली हूँ मैं और क्या जानूँ, सेवा करूँ संत चरनन।
मीरा आगे गिरधर के गुण, सभी काज हुए पूरण॥

प्रेम का अंकुर

जब भक्त प्रभुप्रेम के मार्ग पर पहला कदम रखता है तो लोग उसकी प्रशंसा करते हैं। परंतु जब समय पाकर भक्ति का बीज अंकुरित होकर एक विशाल वृक्ष का रूप ले लेता है तथा भक्त के तन, मन और प्राण अपने प्रियतम के चिंतन में लीन हो जाते हैं तथा भक्ति की मानी हुई परिपाटियाँ अर्थात् पूजा-पाठ, जप-तप आदि भक्त के लिए निरर्थक हो जाती हैं, तब वे ही सांसारिक लोग उसकी आलोचना और निंदा करने लगते हैं। अपने जीवन में मीराबाई को भी इस कठिनाई का सामना करना पड़ा था। इस पद में वे कहती हैं कि अब वे प्रेम के मार्ग से यदि चाहें भी तो नहीं हट सकतीं क्योंकि उन्हें किनारे की झलक दिखाई दे रही है। उन्होंने भक्तिरूपी अमृत की बूँद को पी लिया है तथा वह बूँद उनके अंतर में समा गई है:

गोविन्द सँ प्रीत करत, तबहि क्यों न हटकी।

अब तो बात फैल परी, जैसे बीज बट की॥*

बीच की बिचार नाहि, छाँय परी तट की।†

अब चूको तो ठौर नाहिं, जैसे कला नट की॥‡

जल की घुरी गाँठ परी, रसना गुन रट की।§

अब तो छुड़ाय हारी, बहुत बार झटकी॥

* अब...की=वट वृक्ष के समान प्रेम अंकुरित होकर वृक्ष हो गया है।

† बीच...की=अब बीच में छोड़ने का सवाल ही नहीं उठता क्योंकि किनारा नज़र आने लगा है।

‡ अब...की=जैसे नट रस्सी पर कला दिखाते समय अगर ध्यान विचलित करता है तो नीचे गिरता है।

§ जल...झटकी=मेरी रसना को इस प्रकार प्रभु के गुण (नाम) रटने की आदत पड़ गई है, जैसे जल में भीगी हुई गाँठ खुल नहीं सकती, इसी प्रकार नाम के सुमिरन की आदत छूट नहीं सकती।

घर घर में घोल मठोल,* बानी घट घट की†।
 सबही कर सीस धारे, लोक लाज पटकी‡।
 मद की हस्ती समान, फिरत प्रेम लटकी।
 दास मीराँ भक्ति बुँद हिरदय बीच गटकी॥²⁹

हंसा चुगत जुवार

आत्मा, जो किसी समय अपने निजधाम में आनंद का अनुभव कर रही थी, इस संसार में आकर मैली हो गई है। इस भाव को मीराबाई एक हंस के दृष्टांत द्वारा समझाती हैं जो मानसरोवर के निर्मल जल को छोड़कर इस संसार के कीचड़ भरे तालाब में आकर बस गया है:

माधो बिना बसती उजार, मेरे भाँवे§। (टेक)
 एक समै मोतियन के धोके, हंसा चुगत जुवार॥
 सरवर छाँड तलैया बैठे, पंख लपट रही गार॥
 सरवर सूके तरवर कुम्हलाये, हंसा चले उड़ार॥
 मीराँ के प्रभु कब रे मिलोगे, लाँबी भुजा पसार॥³⁰

संसार की असारता

संसार की असारता बताते हुए मीराबाई भक्ति और प्रेम के मार्ग को अपनाने की प्रेरणा देती हैं। तीर्थ, व्रत, स्नान, योग, वैराग्य आदि अर्थहीन हैं। उनको करने पर भी जीव को फिर से संसार में आना पड़ेगा। मनुष्य

* घोल मठोल=मिंदा और ताने।

† बानी...की=प्रत्येक मुख से अलग-अलग चर्चा सुनाई देती है।

‡ सबही...पटकी=जिस लोक-लाज को सब सिर पर धारण करते हैं उसे मैंने एक ओर पटक दिया है।

§ मेरे भाँवे=मेरे लिए।

को अपने अनमोल जन्म को इस प्रकार की बाहरमुखी क्रियाओं में नष्ट नहीं करना चाहिए:

भज मन चरन कैवल अबिनासी। (टेर)
 जेताइ दीसे धरनि गगन बिच, तेताइ सब उठि जासी।
 कहा भयो तीरथ ब्रत कीन्हे, कहा लिये करवत कासी॥
 इस देही का गरब न करना, माटी में मिल जासी।
 यो संसार चहर की बाजी, साँझ पड़्यां उठि जासी*॥
 कहा भयो है भगवा पहर्यां, घर तज भये सन्यासी।
 जोगी होय जुगति नहिं जानी, उलटि जनम फिर आसी॥
 अरज करौं अबला कर जोरे, स्याम तुम्हारी दासी।
 मीराँ के प्रभु गिरधरनागर, काटो जम की फांसी॥³¹

गुरु-चरणों की महिमा

इस गुजराती पद में मीराबाई जप, तप, तीर्थ आदि की तुलना में गुरुभक्ति को अधिक महत्त्व देती हैं। वे कहती हैं कि यह भेद अथवा ज्ञान उन्हें अपने गुरु से ही प्राप्त हुआ है। पद का भावार्थ इस प्रकार है: “मेरे गुरुदेव ने मेरे कानों में यह बात कही अर्थात् मुझे यह भेद प्रदान किया कि जप, तप, तीर्थ आदि शुभ-कर्मों का फल गुरु के चरणों में पहुँचने से अपने आप ही प्राप्त हो जाता है। चार पदार्थों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) का सुख भी गुरु के चरणों में ही है। हे प्रियतम, मेरे प्रेम को स्वीकार करके मेरे हृदयरूपी मंदिर में आओ। मेरी जाति, वर्ण, गुण, दोष आदि की ओर न देखो। मीराबाई कहती हैं कि हे प्रभु, मैं आपके गुणों का ही ध्यान करती हूँ और आपसे यही प्रार्थना करती हूँ कि मृत्यु के कठिन समय में मेरी सुधि लें और सँभाल करें”:

* चहर...जासी=चिड़ियों का खेल जो कि दिन अस्त होते ही समाप्त हो जाता है।

गुरुये कहियुं करण मां हो शामलियाजी॥

जप तप तीरथ चार पदारथ ये मारा,

गुरुजीना चरण मां हो शामलियाजी॥

प्रेमे करिने मारे मंदिरे पधारो वहाला,

न जोशो जात वरण माँ हो शामलियाजी॥

बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण वहाला,

आड़े आवजो मारा मरण माँ हो शामलियाजी॥³²

लगन नहीं छूटे

प्रभु के प्रति अपने गहरे प्रेम को प्रकट करते हुए मीराबाई कहती हैं कि मेरी तुझसे लगी हुई प्रीति अब टूट नहीं सकती। जैसे धन की चोट खाकर हीरा टूटता नहीं बल्कि और निखर उठता है, वैसे ही संसार के ताने और तेरे वियोग की व्यथा की चोटें सहकर भी मेरा प्रेम स्थिर है। तू मेरे मन में इस प्रकार बसा हुआ है जिस प्रकार कमल की नाल निरंतर जल में रहती है। पद के अंत में मीराबाई कहती हैं कि हे स्वामी, मैं आपके प्रेम में डूबी हुई हूँ, आप ही मेरी प्रीति को निभाना:

हमरे रौरे* लागलि कैसे छूटे॥

जैसे हीरा हनत† निहाई‡, तैसे हम रौरे बनि आई॥

जैसे सोना मिलत सोहागा, तैसे हम रौरे दिल लागा॥

जैसे कमल नाल बिच पानी, तैसे हम रौरे मन मानी॥

जैसे चंदहि मिलत चकोरा, तैसे हम रौरे दिल जोरा॥

जैसे मीराँ पति गिरधारी, तैसे मिलि रहु कुंजबिहारी॥^{§33}

* रौरे=आपसे। † हनत=चोट करता है। ‡ निहाई=घन (लोहार का हथौड़ा)।

§ मीराबाई का यह शब्द अवधी बोली में है।

फेर न मैला होय

मीराबाई हरि के जन अर्थात् गुरु की तुलना धोबी से करते हुए कहती हैं कि गुरु शिष्य के मन को धो दे तो वह दुबारा कभी मैला नहीं हो सकता। वह सुमिरन के साबुन तथा प्रीति के जल से मन को धोकर उसे शील आदि उत्तम गुणों से सजा देता है। इस तनरूपी पिंजरे में मनरूपी तोते को चाहिए कि वह प्रभु का नाम लेता रहे:

धोयँ न मैला होय,* हरिजन धोबिया मन धोय॥

मोह का फंदा काट मूरख, ताटी तन की तोड़†।

पांच पचीसाँ ने गारद‡ करले, मंदर दिवला जोय॥

सूरत साबू प्रीत जल से, कमियाँ शील संजोय§।

ऐसी धोवट धोय धोबिया, फेर न मैला होय॥

तन का पींजरा मन का सूआ, हिरदा में हरि गुण बोल।

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, जीवणा दिन दोय॥³⁴

शरण

सच्ची भक्ति और प्रेम अपने आप को प्रियतम पर न्योछावर कर देना और उनकी प्रत्येक इच्छा में प्रसन्न रहना है। इस भावना को व्यक्त करते हुए मीराबाई कहती हैं कि मैं तो अपने प्रियतम को हर तरह से रिझाने की कोशिश करूँगी। जो वे पहनाएँगे उसी को पहनकर मैं सुख मानूँगी, जो वे देंगे वही खाऊँगी, जैसे और जहाँ वे रखेंगे उसी में संतुष्ट रहूँगी।

* धोयँ...होय=एक बार धोने पर फिर मैला नहीं होता।

† ताटी...तोड़=आत्मा पर से तनरूपी आवरण को हटा।

‡ गारद=गारद अर्थात् नष्ट कर दे।

§ कमियाँ...संजोय=दोषों के स्थान पर शील आदि गुणों को अपना ले।

मैंने अपने आपको उनकी इच्छा पर छोड़ दिया है, यदि वे मुझे बेचना भी चाहें तो मैं खुशी से बिक जाऊँगी:

मैं तो गिरधर के घर जाऊँ।
गिरधर म्हाँरो साँचो प्रीतम, देखत रूप लुभाऊँ॥
रैण पड़ै तब ही उठि जाऊँ, भोर भये उठि आऊँ।
रैण दिना वाके संग खेलूँ ज्यूँ त्यूँ ताहि रिझाऊँ॥
जो पहिरावै सोई पहिरूँ, जो दे सोई खाऊँ।
मेरी उणकी प्रीत पुराणी, उण बिन पल न रहाऊँ॥
जहाँ बैठावे तितही बैठूँ, बेचै तो बिक जाऊँ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, बार बार बलि जाऊँ॥³⁵

जन्म-मरण के साथी

अपनी विरह-वेदना को व्यक्त करते हुए मीराबाई प्रभु से मिलाप के लिए प्रार्थना करती हैं। वे दिन-रात उनके आने की बाट जोहती हैं और उनके दर्शन के लिए व्याकुल आँखें रो-रोकर लाल हो गई हैं। प्रभु-मिलाप के मार्ग में मन बहुत बड़ी बाधा है। वे अपने सतगुरु से प्रार्थना करते हुए कहती हैं कि मेरा मन बड़ा दुष्ट है, वह मदमस्त हाथी के समान उद्दंड है। हे सतगुरु, आप अपना हाथ अंकुश के समान मेरे सिर पर रखें ताकि मेरा मन वश में आ जाए:

म्हारे जन्म-मरण रा साथी, थाने नहिं बिसरूँ दिन राती॥
थाँ देख्यौ बिन कल न पड़त है, जाणत मेरी छाती।
ऊँची चढ़-चढ़ पंथ निहारूँ, रोय-रोय आँखियाँ राती*॥

* राती=लाल हो गई हैं।

यो संसार सकल जग झूठो, झूठा कुल रा न्याती*।
दोउ कर जोड़्यौ अरज करूँ छूँ सुण लीज्यो मेरी बाती॥
यो मन मेरो बड़ो हरामी, ज्यूँ मदमातो हाथी।
सतगुरु हाथ धर्यो सिर ऊपर, आँकुस दै समझाती॥
पल-पल पिव को रूप निहारूँ, निरख-निरख सुखपाती।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरि चरणौ चित राती†॥³⁶

लीनो गोविंदो मोल

अपने परिवार के लोगों की आलोचना का उत्तर देते हुए मीराबाई कहती हैं कि उन्होंने उस अनमोल प्रभु को मोल ले लिया है अर्थात् प्रभु को पूर्णतया अपना लिया है और प्रेम के वश हो प्रभु उनके हो गए हैं। चाहे लोग कहें कि उन्होंने यह अच्छा व्यापार नहीं किया अर्थात् प्रेम के मार्ग को अपनाकर उचित नहीं किया, पर मीराबाई डंके की चोट पर कहती हैं कि उन्होंने एक बहुमूल्य सौदा किया है:

मीरा री मैं तो लीनो गोविंदो मोल। (टेर)
कोई कहै छाने कोई कहै छुपकै, लियो री बजंता ढोल॥
कोई कहै महंगो कोई कहै सोंघो, लियो री तराजू तोल॥
कोई कहै कारो कोई कहै गोरो, लियो री अमोलिक मोल॥
याही कूँ सब लोग जाणत है, लियो री आँखी खोल॥
मीरा कूँ प्रभु दरसण दीज्यो, पूरब जनम का कोल॥³⁷

* न्याती=परिवार और स्वजन।

† हरि...राती=ध्यान हरि के चरणों में रहता है।

बेगि मिलो आई

अपने रूप और गुणों की रस्सी से कमल-नयन प्रभु ने मीराबाई के हृदय को बाँध लिया है। प्रेम के तीर से उनके हृदय को बेधकर प्रभु अब उन्हें वियोग की असह्य व्यथा सहने के लिए छोड़ गए हैं। वे जानती हैं कि उनके प्रियतम उनके पास ही हैं, दूर नहीं, क्योंकि प्रभु मनुष्य-शरीर के अंदर निवास करता है। परंतु अंतर में प्रवेश करके उनको देख न पाने के कारण वे उनसे प्रार्थना करती हैं कि जल्दी आकर उनसे मिलें:

मन हमारा बाँध्यो माई, कैवल नैन अपने गुन। (टेक)
तीखण तीर बेध शरीर दूरि गयो माई।
लाग्यो तब जान्यों नहीं, अब न सह्यो जाई री माई॥
तंत मंत औषद करउ, तऊ पीर न जाई।
है कोऊ उपकार करे? कठिन दर्द री माई॥
निकटि हो तुम दूरि नहीं, बेगि मिलो आई।
मीराँ गिरधर स्वामी दयाल, तन की तपति बुझाई री माई।*
(कैवल नैन आपने गुन बाँध्यो माई।)॥³⁸

अविनाशी वर

अनादि काल के इस भयंकर संसार-सागर में दुःख पाते रहने के बाद सतगुरु का मिलाप प्राप्त करके मीराबाई पार हो गई हैं। अपने आत्मिक आनंद में मग्न हो वे कहती हैं कि मैंने ऐसा वर प्राप्त कर लिया है जो अखंड और अविनाशी है। पद का भावार्थ इस प्रकार है: “हे सखी, मैंने तो

* मीराबाई का यह पद ‘भाई बन्नो दी बीड़’ में भी मिलता है।

ऐसा वर प्राप्त कर लिया है जो अमर और अविनाशी है। परिवार और संबंधी सब स्वार्थ के साथी हैं, मैंने इनके जाल से छुटकारा पा लिया है। इस संसार में जन्म पाकर मैंने बहुत दुःख पाए और घर के धंधों में ही उलझी रही। यह सारा संसार ही विकराल और भयंकर है, इसे देखकर मैं काँप उठी। इस भवसागर में मैंने बहुत कष्ट पाए और चौरासी में भटकती रही। इस जन्म में संतों की संगति प्राप्त करके मैंने बहुत सुख पाया और अंतर में स्थिर हो सकी। अपने सतगुरु की पूर्ण कृपा से अब मैं भवसागर तर गई हूँ।” मीराबाई कहती हैं कि हे प्रभु, आपकी कृपा से मैं संत के चरणों में पहुँच गई हूँ:

अखंड वर ने वरी सहेली। हूँ तो अखंड वर ने वरी॥
कुटुंब सहोदर स्वार्थना सौ। प्रपंच थी परहरी॥
जन्म धरीने महा दुख पामी। घरनो ते धंधों करी॥
सर्व संसार भयंकर कालो। ते देखी थरथरी॥
भवसागर मां महा दुख पामी। लक्ष चौरासी फरी॥
संत संगत मां महा सुख पामी। बैठी ठेकाणे ठरी॥
श्री सत गुरु नी पुरण कृपा थी। भवसागर हूँ तरी॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण। संत चरण मां पड़ी॥³⁹

चरखा

इस पद में मीराबाई कहती हैं कि मैं इस मनुष्य-देहरूपी चरखे को किस प्रकार कातूँ क्योंकि प्रभु के बिना मेरी जीवनरूपी चरखे की डोर बार-बार उतर जाती है। मेरे चरखे को बड़े ही कुशल कारीगर (प्रभु) ने बनाया है। अब मैं मन की माला बनाकर चरखा कात रही हूँ। प्रेमरूपी पिंजियारे ने मेरे लिए रूई पीजी है और ज्ञान के पटिये पर उसकी पूनी बनाई है। परंतु पाँच इंद्रियाँरूपी सखियाँ मेरे साथ कातने बैठ गई हैं, जो सूत को

गलत दिशा में खींच रही हैं। सुहागिन आत्माएँ * बड़ी कुशल कातनेवाली हैं, वे सूत को गगन† में ले जाती हैं। वे ज्ञानरूपी सूत कातकर उसकी गठरी तैयार करती हैं जो सीधे सबसे ऊँची मंडी में बिकने को जाती है। मेरे सतगुरु बड़े ही उत्तम व्यापारी हैं, वे मेरे काते हुए सूत के बदले में अनुपम वस्तु दिलाते हैं। मीराबाई कहती हैं कि मैं हर्ष के साथ गुरु को देखती हूँ और उनके गुण गाती हूँ:

रेंटिया‡ ने किस विध कातुं ए माय॥
हरि बिना जीवड़ो निकस्यो जाय॥
सजन कारिगर म्हांने रेंटियो घड़ दीनो,
नसारी माल बनास्यां ए माय॥
प्रेम पीनारे म्हांने रूई पिन दीनी,
ज्ञान केरि हाठ भराई ए माय॥
पांच सखियां मिल कातण बेठी,
उलटाई तार चडावे ए माय॥
सुरत सवागण बड़ि कतवारण,
तार गगन में ले जावे ए माय॥
ज्ञान सूत की बंधी गठड़िया,
सूधि§ सिखर गड़ जावे ए माय॥
सतगुरू म्हारा बड़ा हि सोदागर,
सूगी वस्तु॥॥ दिराइ ए माय॥
मीराँ कहै प्रभु गिरधर नागर,
हरखि निरखि गुण गावे ए माय॥⁴⁰

* सुहागिन आत्माएँ=वे आत्माएँ जो अंतर में प्रभु से मिलाप कर चुकी हैं।

† गगन=आत्मा की आंतरिक यात्रा की दूसरी मंजिल को गगन कहते हैं।

‡ रेंटिया=चरखा। § सूधि=सीधी। ॥ सूगी वस्तु=बेमिसाल, बेजोड़ चीज़।

सतगुरु की कृपा

इस छोटे-से पद में मीराबाई अंतर में सतगुरु के दर्शन प्राप्त करने की प्रसन्नता का वर्णन करते हुए कहती हैं कि जब मुझे अंतर में सतगुरु मिले और उन्होंने कृपा की तो मुझे प्रभु ने दर्शन दिए। सतगुरु ने मुझे वह शब्द दिखाया जिसकी मैं अंश हूँ और मेरे ध्यान को शब्द की धुन में जोड़ दिया:

मैं तो राजी भई मेरे मन में, मोहि पिया मिले इक छिन में। (टेक)
पिया मिल्या मोहि किरपा कीन्ही, दीदार दिखाया हरि ने॥
सतगुरु सबद लखाया* अंसरी, ध्यान लगाया धुन में॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, मगन भई मेरे मन में॥⁴¹

सोनैं काट न लागै

परंपरागत पूजा-पाठ तथा राजसी लोकाचार की उपेक्षा करने के कारण मीराबाई की बहुत निंदा की गई। मेवाड़ के राणा और राजपरिवार उनसे रुष्ट थे क्योंकि उन्होंने संत रविदास को अपना गुरु धारण किया था। इस पद में अपने आलोचकों को उत्तर देते हुए मीराबाई कहती हैं कि चाहे अब मेरी कितनी ही निंदा की जाए, मैं अपने मार्ग से नहीं हटूँगी, न ही अपने गुरु से मुख मोड़ूँगी। अब मैं निंदा और स्तुति दोनों से परे हूँ और सबकुछ सहने को तैयार हूँ:

* लखाय='लखाया' अर्थात् 'दिखाया' से मीराबाई का तात्पर्य है कि शब्द केवल सुना ही नहीं बल्कि देखा भी जा सकता है।

निंदा म्हारी भलाई करोनै, सोनैं काट* न लागै। (टेर)
जोग लियो जग जातौ देख्यौ, हरि भजबाकै काजै।
जो कोई करणीं में चूक पड़ै तो, सतगुरु म्हारा लाजै॥
धन रे लोका थारी करणीं, कीड़ीरौ कुंजर बणायौ†।
अणदीठी अण सांमले रे, बद बद बाद उठायौ‡।
कुल कूँ छाँडि कडूबो छाँड्यौ, छाँडी ममता माई§।
और दुनियां कौ दावौ छोड्यौ, छोडी लोभ बड़ाई॥
पर गल दोइ में पलो बिछायौ¶, मन भावै ज्यूँ कहीयौ।
यो जस मीराँ बाई गावै, ज्यूँ कहियौ ज्यों सहियौ॥⁴²

दरद न जाने कोय

मीराबाई अपने प्रियतम के वियोग में व्याकुल हैं। अपनी विरह-व्यथा में उन्हें ऐसा प्रतीत होता है मानो उनकी सेज सूली पर बिछी हुई है; अतएव उन्हें न नींद आती है और न ही चैन मिलता है। प्रियतम से मिलाप प्राप्त करना भी उन्हें असंभव-सा लगता है, क्योंकि उनका वास तो नेत्रों के केंद्र से ऊपर सूक्ष्म मंडलों में है जहाँ वे पहुँच नहीं पा रही हैं। वे कहती हैं कि घायल की पीड़ा कोई घायल ही जान सकता है अथवा वह जान सकता है जिसने चोट लगाई है, क्योंकि उसे पता है कि उसने कितना गहरा आघात किया है। जौहर** अर्थात् जौहर करनेवाली स्त्री के प्रेम, उत्साह और

* काट=जंग। † कीड़ीरौ...बणायौ=कीड़े को बढ़ा-चढ़ाकर हाथी का रूप दे दिया।

‡ बिना देखे और बिना समझे जो मन में आया सो कहा। § माई=माया।

¶ पर...बिछायौ=निंदा और स्तुति दोनों से परे अपना स्थान बना लिया है।

**मध्यकालीन राजस्थान में जौहर की प्रथा थी। जब शत्रु के घेरे के कारण किले और नगर की रक्षा हर प्रकार से असंभव प्रतीत होने लगती थी तो स्त्रियाँ उत्तम वस्त्र और आभूषणों से सजकर, दुलहन की भाँति शृंगार करके अपने पति को युद्ध में जाने के लिए विदा करती थीं। उन्हें विदा करके प्रेम और वीर-रस के गीत गाते हुए वे प्रज्वलित चिता में प्रवेश करके प्राण दे देती थीं। पुरुष युद्धभूमि में प्राणों की आहुति दे देते थे।

(शेष अगले पृष्ठ पर)

जोश को वही स्त्री जान सकती है जिसे जौहर द्वारा अपने प्राणों की आहुति देकर दूसरे लोक में अपने प्यारे पति से मिलाप की उत्कंठा हो। पद के अंत में मीराबाई कहती हैं कि उनकी वियोग की पीड़ा का उपचार सिवाय प्रियतम के और कोई नहीं कर सकता:

हेरी मैं तो प्रेम दिवानी, मेरो दरद न जाने कोय।
सूली ऊपर सेज हमारी, किस बिध सोना होय।
गगन मंडल में सेज पिया की, किस बिध मिलना होय।
घायल की गति घायल जानै, की जिन लाई होय।
जौहर की गति जौहर जानै, की जिन जौहर होय।
दरद की मारी बन बन डोलूं बेद मिला नहिं कोय।
मीरां की प्रभु पीर मिटैगी, जब बैद सांवलिया होय।⁴³

छोड़ मत जाना

मीराबाई अपने गुरु से कहती हैं कि मैं गुणहीन और बलहीन हूँ, तुम सब प्रकार से समर्थ हो। मैं तुम्हारी हो चुकी हूँ, अब तुम्हें छोड़कर कहाँ जाऊँ? मेरी लाज तुम्हारे हाथ में है:

(पिछले पृष्ठ के फुट नोट का शेष)

युद्ध में इस प्रकार वीरगति पाना और स्त्रियों का जौहर करना बड़े गौरव की बात मानी जाती थी। यह विश्वास किया जाता था कि जौहर करनेवाली स्त्रियों का दूसरे लोक में अपने पति से मिलाप होगा। पति मिलाप के विचार से स्त्रियाँ बड़े उत्साह और जोश के साथ अग्नि में प्रवेश करती थीं।

अनेक आधुनिक पाठों में ये पंक्तियाँ 'जौहर की गति जौहर जाने, की जिन जौहर होय' कर दी गई हैं और आम तौर पर इनका अर्थ यही किया जाता है कि रत्न की परख कुशल जौहरी ही कर सकता है अथवा वह कर सकता है जिसमें यह योग्यता हो। परंतु जौहरी की कुशलता का भाव पूरे पद में वर्णित विरह की तीव्रता और प्रियतम के मिलाप की आकांक्षा के साथ मेल नहीं खाता।

छोड़ मत जाज्योजी महाराज॥

में अबला बल नायँ गुसाईं तुम ही मेरे सिरताज॥

में गुणहीन गुण नायँ गुसाईं तुम समरथ महाराज॥

थौरी* होय के किणरे† जाऊँ, तुम ही हिवड़ा‡ रो साज॥

मीराँ के प्रभु और न कोई, राखो अब के लाज॥⁴⁴

अनमोल अवसर

सभी संत कहते हैं कि मनुष्य-जन्म परमात्मा को प्राप्त करने का अमूल्य अवसर है जो बार-बार नहीं मिलता। परंतु मनुष्य व्यर्थ के धंधों और संसार की मोह-माया में उलझकर इस अवसर को हाथ से गँवा देता है, वह वापस चौरासी के चक्र में चला जाता है। मीराबाई कहती हैं कि आयु पल-पल बढ़ रही है और उसके साथ ही हमारे इस जगत में रहने की अवधि भी प्रतिपल घट रही है। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि नामरूपी नौका पर सवार होकर इस भवसागर को पार कर ले:

नहिं ऐसो जनम बारम्बार।

क्या जानूँ कछु पुण्य प्रगटे मानुसा अवतार॥

बढ़त पल पल, घटत छिन छिन जात न लागे वार।

बिरछ के ज्यों पात टूटै लगे नहीं पुनि डार॥

भौ सागर अति जोर कहिये विषम ऊँडी धार।

राम नाम का बाँध बेड़ा उतर परले पार॥

ज्ञान चौसर मँडी चोहटे, सुरत पासा सार।

या दुनिया में रची बाजी, जीत भावैं हार॥[§]

* थौरी=तुम्हारी। † किणरे=किसके पास। ‡ हिवड़ा=हृदय।

§ या...हार=यह दुनिया चौपड़ की बाज़ी के समान है, मनुष्य ज्ञानरूपी पासा फेंककर आत्मारूपी सार (या गोटे) को अपने निजघर पहुँचा दे अथवा अज्ञान में उलझकर बाज़ी हार जाए।

साधु संत महंत ज्ञानी, चलत करत पुकार।

दासी मीराँ लाल गिरधर, जीवणा दिन च्यार॥⁴⁵

हुआ समुद्र से मेल

जब किसी साधारण मनुष्य की पहुँच किसी राजा के घर तक हो जाती है तो उसकी सभी इच्छाएँ पूरी हो जाती हैं। वह संसार की साधारण वस्तुओं के लिए नहीं तरसता। मीराबाई इस उदाहरण को लेकर कहती हैं कि उन्होंने बड़े घर अर्थात् प्रभु के धाम में प्रवेश पा लिया है, जिसके फलस्वरूप उनके मन की कामनाएँ और तृष्णाएँ दूर हो गई हैं। कुछ दृष्टान्तों के द्वारा वे संतों के मार्ग के इस पक्ष को स्पष्ट करती हैं कि जब मनुष्य की लगन अंतर में प्रभु की ओर लग जाती है तो वह अपने आप ही संसार और उसके पदार्थों की ओर से अनासक्त या विरक्त हो जाता है। जब किसी को आंतरिक आनंद के अमृत का स्वाद आ जाता है तो वह अपने आप ही संसार के गंदे पोखरों के पानी से मुख मोड़ लेता है:

बड़े घर ताली* लागी रे, म्हाँरा मन री उणारथ† भागी रे॥

छीलरिये‡ म्हाँरो चित्त नहीं रे, डाबरिये§ कुण जाव।

गंगा-जमना सूँ काम नहीं रे, मैं तो जाय मिलूँ दरियाव॥

हाल्यौं मोल्यौं॥ सूँ काम नहीं रे, सीख नहिं सिरदार**।

कामदारौं सूँ काम नहीं रे, मैं तो जाब†† करूँ दरबार॥

काच कथीर सूँ काम नहीं रे, लोहा चढ़े सिर भार।

सोना रूपा सूँ काम नहीं रे, म्हाँरे हीराँ रो बौपार॥

* ताली=ध्यान, समाधि, तारी। † उणारथ=कामना या तृष्णा।

‡ छीलरिये=गंदे पानी का तालाब। § डाबरिये=छोटा तालाब।

॥ हाल्यौं मोल्यौं=नौकर-चाकर।

**सीख...सिरदार=सरदारों को मंत्रणा की ज़रूरत नहीं।

††जाब=जवाब अर्थात् बात।

भाग हमारो जागियो रे, भयो समैद सँ सीर*।
 अम्रित प्याला छाँडिके, कुण पीवे कड़वो नीर॥
 पीपा† कूँ प्रभु परचो दियो रे, दीन्हा खजीनो‡ पूर।
 मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, धणी मिल्या छै§ हजूर॥⁴⁶

मगन होय मीरा चली

मीराबाई कहती हैं कि प्रभु के प्रेम में मग्न होकर वे उससे मिलने के लिए चल पड़ी हैं। लोक-लाज, कुल की मर्यादा, मान-अपमान आदि बंधनों को त्यागकर उन्होंने आत्म-ज्ञान की गली में प्रवेश किया है। आंतरिक मंडलों का संकेत देते हुए वे कहती हैं कि तीनों गुणों से परे लाल किवाड़ वाले महल की अटारी पर उनके प्रियतम, प्रभु की सेज बिछी है। शुभ गुणरूपी आभूषणों से सुशोभित होकर वे सुमिरनरूपी थाल हाथ में लिए प्रभु-मिलाप को जा रही हैं। अब उनकी वृत्ति संसार की ओर से हटकर आँखों के केंद्र से ऊपर सुखमना में लगी हुई है:

तेरो कोई नहिं रोकणहार, मगन होय मीराँ चली॥
 लाज सरम कुल की मरजादा, सिर सैं दूर करी।
 मान अपमान दोउ धर पटके, निकसी हूँ ग्याँन गली॥
 ऊँची अटरिया लाल किंवडिया, निरगुण सेज बिछी।
 पँचरंगी झालर सुभ सोहै, फूलन फूल कली॥
 बाजूबंद कडूला सोहै, सिन्दुर माँग भरी।
 सुमिरन थाल हाथ में लीन्हा, सोभा अधिक खरी॥

* सीर=संबंध, मेल।

† पीपा=राजा पीपा, जो कि मीराबाई की भौति संत रविदास के शिष्य थे।

‡ खजीनो=खज़ाना। § छै=है।

सेज सुखमणा* मीराँ सोवे, सुभ है आज घरी।
 तुम जावो राणा घर अपणे, मेरी तेरी नाहिं सरी॥⁴⁷

राम खुमारी

प्रभु-प्रेमरूपी मदिरा के खुमार में मीराबाई आत्म-विस्मृत हो गई हैं। सतगुरु ने आंतरिक भेद प्रकट कर दिया है और भ्रम का द्वार तोड़ दिया है। शब्द की ध्वनि और प्रकाश का वर्णन वर्षा, बिजली, मेघ-गर्जना आदि से करते हुए वे कहती हैं कि शब्द की धुन और प्रकाश के सहारे वे अगम अटारी में पहुँचेंगी:

लागी मोहिं राम खुमारी हो॥
 रमझम बरसै मेहड़ा भीजै तन सारी हो।
 चहुँ दिस दमकै दामणी गरजै घन भारी हो॥
 सतगुरु भेद बताइया खोली भरम किंवारी हो।
 सब घट दीसै आतमा सबही सँ न्यारी हो॥
 दीपक जोउँ ज्ञान का चढ़ूँ अगम अटारी हो।
 मीराँ दासी राम की इमरत बलिहारी हो†॥⁴⁸

मुझे लगन लगी

जब अभ्यासी आँखों के केंद्र से ऊपर आत्मिक मंडलों में प्रवेश करता है और अंदर शब्द के प्रकाश और ध्वनि के संपर्क में आता है तो उसके हृदय में सच्चा प्रेम जाग्रत होता है और उसके अंदर प्रभु को प्राप्त करने की तथा अपने निजघर पहुँचने की लगन लग जाती है:

* सुखमणा=दोनों आँखों के मध्य से ऊपर की ओर जानेवाले आत्मिक मार्ग को संतों ने 'सुखमना' और 'सुखमन' कहा है। यह योगियों की सुषुम्ना से भिन्न है।
 † इमरत...हो=प्रेमरूपी अमृत पर बलिहार जाती हूँ।

मुझे लगन लगी प्रभु पावन की।
 पावन की घर आवन की॥
 छोड़ काज अरू लाज जगत की।
 निसदिन ज्ञान लगावन की॥
 सुरत उजाली खुल गई ताली।
 गगन महल में जावन की॥*
 झिलमिलकारी ज्योति निहारी।
 जैसे बिजली सावन की॥
 बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर।
 हरख निरख गुण गावन की॥⁴⁹

दूसरा न कोई

मीराबाई कहती हैं कि परमात्मा के नाम के सिवाय इस संसार में उनका कोई नहीं है। संतों की संगति के फलस्वरूप वे लोकलाज आदि सांसारिक बंधनों से मुक्त हो गई हैं:

अब तो मेरा राम नाम दूसरा न कोई॥
 माता छोड़ी पिता छोड़े, छोड़ा सगा भाई।
 साधु संग बैठ बैठ लोक लाज खोई॥
 संत देख दौड़ आई, जगत देख रोई।
 प्रेम आंसु डार डार, अमर बेल बोई॥
 मारग में तारग† मिले, संत राम दोई।
 संत सदा शीश रखूं, राम हृदय होई॥

* सुरत...की=आँखों के पीछे दसवें द्वार का ताला खुल गया और आत्मा प्रकाश-मंडल में पहुँच गई। † तारग=तारनेवाला।

अंत में से तंत काढ़यो, पीछे रही सोई।*
 राणे भेज्या विष का प्याला, पीवत मस्त होई॥
 अब तो बात फैल गई, जानै सब कोई।
 दास मीराँ लाल गिरधर, होनी हो सो होई॥⁵⁰

दीया बिन अंधेरा

इस गुजराती पद में मीराबाई मनुष्य-शरीर की तुलना एक मंदिर से करते हुए कहती हैं कि समय और आयु के साथ यह शरीररूपी मंदिर जीर्ण-शीर्ण होकर गिरनेवाला है। इसकी दीवारें काँप रही हैं, खंभे कमज़ोर हो गए हैं और नींव इसका भार सँभालने में असमर्थ है। अब मनुष्य दीया जलाने के लिए हाथ में कटोरी लेकर एक घर से दूसरे घर तेल उधार माँगना शुरू करता है। परंतु अब बहुत देर हो गई, आत्मारूपी व्यापारी ने दुकान बंद कर दी और यमदूत उसमें खुशी से नाच रहे हैं। वे कहती हैं कि प्रभु के प्रेम द्वारा उन्होंने अपने जीवन को सार्थक बना लिया है और वे यमदूतों को आसानी से भगा देती हैं:

मंदरिया में दीवडा बिनानुं अंधारूं॥
 खलमल्यां देवल उभी रही थांभली रे,
 त्राटुं नहि झीले एनो भार रे॥
 हाथ मां वाटकडी घोघर घुमती रे,
 कोई द्यो तेल ओधारूं॥
 उठि गयो वाणीयो ने पड़ी रही हाटडी रे,
 जमडा करे छे धींगाणुं॥
 बाई मीराँ कहे प्रभु गिरिधर नागर,
 आवतां जमडा ने पाछो वालुं॥⁵¹

* अंत...सोई=मैंने अंत अथवा परम सत्य में से सारतत्त्व को निकाल लिया है और मुझे यह ज्ञान प्राप्त हुआ है कि जो वह है वही मैं हूँ। 'सोई' का अर्थ कुछ विद्वानों ने सोह किया है।

(ऊपर दिए गुजराती पद का हिंदी अनुवाद)

मंदिर में बिन दीये अँधेरा॥
काँपता है मंदिर स्तम्भ उसके जर्जर,
नींव न उठा पाये भार॥
हाथ में कटोरा ले घूमती घर-घर,
दो कोई तेल उधार॥
उठ गया बनिया, खाली दुकान है,
हो खुश यह करते शोर॥
मीरा कहे प्रभु गिरधर नागर,
आएँ यम दूँ पीछे मोड़॥

सत्संग का रस

यह भी मीराबाई का एक गुजराती पद है जिसमें वे मनुष्य को संतों की संगति में जाने की प्रेरणा देती हैं। सत्संग का रस शुरू में कड़वा लगता है, क्योंकि मन को स्थिर तथा नियंत्रित होना पसंद नहीं है परंतु निरंतर संतों की संगति में रहने से मन पर सत्संग का रंग चढ़ने लगता है और वह उसमें रस लेने लगता है। हाथी, घोड़े, धन-दौलत कोई भी जीव के साथ नहीं जाते, यहाँ तक कि शरीर भी अंत में खाक हो जाता है। वे कहती हैं कि इन सबका गर्व करना व्यर्थ है, क्योंकि ये जीव के निरंतर बंधन का कारण हैं। सत्संग के द्वारा अल्प समय में मुक्ति प्राप्त होती है, वेद-शास्त्र और धर्मग्रंथ इस बात की साक्षी देते हैं:

सत्संग नो रस चाख प्राणी, तुं तो सत्संग नो रस चाख॥
प्रथम लागे तीखो ने कड़वो, पछी* आंबा केरी शाख॥

* पछी=बाद में।

आरे काया नो गर्व न कीजे, अंते थवानी छे खाख*॥
हस्ती ने घोड़ा माल खजाना, काँई न जावे साथ॥
सत्संगथी बे† घड़ीमां मुक्ति, वेद पुरे छे साख॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, हरि चरणे चित राख॥⁵²

(ऊपर दिए गुजराती पद का हिंदी अनुवाद)

सत्संग का रस चख ले प्राणी, चख सत्संग का रहस॥
पहले तो यह तीखा कड़वा, फिर जैसा आम का रहस॥
इस काया का गर्व न कर तू, अन्त में हो यह राख॥
हाथी घोड़ा माल खजाना, कोई न जाये साथ॥
सत्संग से दो घड़ी में मुक्ति, साक्षी वेद-पुराण॥
मीरा कहे प्रभु गिरधर के गुण, हरि चरनन चित राख॥

दर्शन दीजो जी

मीराबाई अपने सतगुरु से प्रार्थना करते हुए कहती हैं कि जैसे भी आप चाहें, मेरी सुधि लें, मेरे अवगुणों की ओर ध्यान न दें। मैं आपकी शरण में आई हूँ, मुझे दर्शन दें और फिर कभी अपने से दूर न करें:

म्हारी सुध ज्यूँ जानो ज्यूँ लीजो जी। (टेक)
पल पल भीतर पंथ निहारूँ, दरसण म्हाँने दीजो जी॥
मैं तो हूँ बहु औगणहारी, औगण चित्त मत दीजो जी॥
मैं तो दासी थारे चरण-जनाँ की, मिल बिछुरन मत कीजो जी॥
मीराँ तो सतगुरु जी सरणे, हरि चरणाँ चित दीजो जी॥⁵³

* छे खाख=अंत में खाक होनेवाली है। † बे=दो।

विरह-व्यथा

अपने प्रियतम के दर्शन के लिए व्याकुल मीराबाई इस पद में अपनी विरह-व्यथा व्यक्त करती हैं। प्रभु के वियोग में उन्हें पल भर के लिए भी चैन नहीं मिलता। उनकी एक-एक रात छः महीने की हो गई है और वे इस प्रकार तड़प रही हैं मानो उनके हृदय में करवत चल रही हो:

दरस बिन दूखन लागे नैन॥ टेक॥

जब से तुम बिछरे मेरे प्रभु जी, कबहुँ न पायों चैन।

सबद सुनत मेरी छतियाँ कंपै, मीठे लगे तुम बैन॥

एक टकटकी पंथ निहारूँ, भई छमासी रैन॥

बिरह बिथा कासूँ कहूँ सजनी, बह गइ करवत औन॥

मीरा के प्रभु कब रे मिलोगे, दुख मेटन सुख देन॥⁵⁴

कुंवारी क्यों रही

प्रभु-साक्षात्कार को मीराबाई ने आत्मा का विवाह कहा है। नव-विवाहित आत्मा जब प्रभु के धाम पहुँचती है तो अन्य सुहागिन आत्माएँ उससे पूछती हैं कि तू इतने समय तक कुंवारी क्यों रही? आत्मा उत्तर देती है कि वह युगों-युगों से कुंवारी ही रहती आई है क्योंकि उसे सतगुरु नहीं मिले। सतगुरु ही उसके लिए वर ढूँढ़कर, विवाह का लगन निश्चित करके उसका हाथ प्रभुरूपी वर के हाथ में दे सकते थे। दूसरे शब्दों में प्रभु का मिलाप तब तक नहीं हो सकता जब तक सतगुरु न मिलें।

विवाह का वर्णन करते हुए मीराबाई कहती हैं कि सतगुरु ने आंतरिक मंडलों में विवाह की वेदी रची, प्रभु ने हथ-लेवा जोड़ा और दहेज में प्रेमरूपी रत्न, ज्ञान के गहने और नाम का हार दिया। इस प्रकार विवाहित आत्मा शब्दरूपी ढोल के साथ रूहानी मंडलों पर चढ़कर पति के घर पहुँच गई:

सुरता सवागण नार कुंवारी क्यूं रही।

सतगुरू मिलिया नांय कुंवारी बीरा यूं रही॥

सतगुरू बेगि मिलाय छिन में सावा सोदिया*।

झटपट लगन लखाय ब्याव बेगो छेड़िया॥

अड़द सुड़द† के बीच रतन चंवरी रची।

हर हतलेवा जोड़ सुरत फेरा फरे॥

भाभल‡ दीयो डाइजो§ रतन धन चार पदारथ प्रेम रा।

गेणो म्हारे ज्ञान रो पैरायो हार हर नाम रा॥

छोड़या छोड़या मामा मोसाल¶ भुवा** दस बेनड़ी।††

छोड़यो म्हारी सहेल्यां‡‡ रो साथ गुरां आगे जा खड़ी॥

परण परणाय घणा दिन रही म्हारा बाप रे।§§

अब म्हुँ चढ़ गई ढोल बजाय घर चाली आपणे॥

भँवर गुफा रे मांय पुरुष एक सार है।

सत सत कहे मीराँ दास वही भरतार है॥⁵⁵

नाम रतन धन

इस पद में मीराबाई नाम की प्रशंसा करते हुए कहती हैं कि मुझे यह अनमोल धन मेरे सतगुरु ने दिया है और मुझे कृपा करके अपना लिया है। इस दुर्लभ पदार्थ को पाकर मैंने जग में जो कुछ भी अपना था उसे

* सोदिया=विवाह का लगन निकाला।

† अड़द सुड़द=अरध-उरध (अर्ध-उर्ध), आँखों के केंद्र अथवा तीसरे तिल को संतों ने 'अरध' तथा पारब्रह्म के मंडल को उरध' कहा है। अर्ध-उर्ध के बीच से मीराबाई का आशय उस निर्मल चेतन देश से है जो मन और माया से परे है और जो आत्मा के आंतरिक मार्ग में तीसरी मंजिल है।

‡ भाभल=पिता। § डाइजो=दहेज। ¶ मोसाल=पाँच विकार।

**भुवा=तृष्णा और कामनाएँ।

††दस बेनड़ी=दस इंद्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ।

‡‡सहेल्यां=पच्चीस प्रकृतियाँ। §§ संसाररूपी पीहर।

खो दिया है अर्थात् अब संसार की सभी वस्तुएँ मेरे लिए सारहीन हो गई हैं। मैं सच्चे नाम की नौका में बैठ गई हूँ जिसको खेनेवाला सतगुरु है जो मुझे भवसागर से पार करा देगा:

पायो जी मैंने नाम रतन धन पायो॥ टेक॥
बस्तु अमोलक दी मेरे सतगुरु, किरपा कर अपनायो॥
जनम जनम की पूँजी पाई, जग में सभी खोवायो॥
खरचै नहिं कोई चोर न लेवे, दिन दिन बढ़त सवायो॥
सत की नाव खेवटिया सतगुरु, भवसागर तर आयो॥
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, हरख हरख जस गायो॥⁵⁶

मैं अपना घर जानी

इस पद में मीराबाई अपने निजघर जाने की व्यग्रता प्रकट करते हुए कहती हैं कि अब उन्होंने अपने मन में निश्चय कर लिया है कि वे आंतरिक मंडलों में जाएँगी। अभी तक उन्हें अपने असली घर का भेद बतानेवाला कोई नहीं मिला था। इसलिए वे इस संसार में विभिन्न खानियों (योनियों) में जन्म लेती रहीं और प्रभु से वियोग की पीड़ा सहती रहीं। परंतु इस जन्म में जब उन्हें अपने सतगुरु संत रविदास मिल गए तो उनकी व्यथा का अंत हो गया। सतगुरु ने अपने घर का भेद प्रदान किया और उनकी आत्मा को शब्दरूपी चिह्न (सहदानी) देकर अपने प्रियतम से मिला दिया:

मीराँ मन मानी सुरत सैल असमानी। (टेक)
जब जब सुरत लगे वा घर की, पल पल नैनन पानी॥
ज्यों हिये पीर तीर सम सालत, कसक कसक कसकानी॥
रात दिवस मोहि नींद न आवत, भावे अन्न न पानी॥
ऐसी पीर बिरह तन भीतर, जागत रैन बिहानी॥
ऐसा बैद मिलै कोई भेदी, देस बिदेस पिछानी॥

तासों पीर कहूँ तन केरी, फिर नहिं भरमों खानी॥
खोजत फिरूँ भेद वा घर को, कोई न करत बखानी॥
रैदास सन्त मिले मोहि सतगुरु, दीन्हीं सुरत सहदानी॥
मैं मिली जाय पाय पिय अपना, तब मोरी पीर बुझानी॥
मीराँ खाक खलक सिर डारी, मैं अपना घर जानी॥⁵⁷

भक्ति करे कोई सूरमा

इस पद में मीराबाई कहती हैं कि वे प्रभु के प्रेम में इतनी लीन हो गई हैं कि उन्हें प्रभु से भिन्न कुछ भी दिखाई नहीं देता। जिस प्रकार सागर की लहरों पर तैरती हुई नौका पर किनारों की चहल-पहल और जश्न का कोई असर नहीं पड़ता, इसी प्रकार संसार के मोह और आकर्षण का अब उन पर कोई प्रभाव नहीं है। कबीर साहिब, पलटू साहिब तथा अन्य संतों की तरह वे भी कहती हैं कि भक्ति के मार्ग में वही सूरमा सफल हो सकता है जिसने अपना सिर उतारकर, अर्थात् अपने अहंकार, मान और अपमान को त्यागकर इस मार्ग को अपनाया है:

मैं ओलगयो रामरो*, जाकूँ विलग† न लागे काँई ए॥
चढ़ी विलोले‡ नांव रे, जाको बाण न लागे आई ए॥
बायां ए बायां बेनइयां§, बायां थांसु¶ भगति न होय ए।
भगति करे कोई सूरवाँ, ज्याका धड़ पर सीस न कोई ए॥
शूरा खेत वुहारणा, हरि मिलवा कै काज लड़ाई ए।
कायर कायर भाजिया, शूरा रह्या रण मांछ रे॥
मीराँ कहे जग जाय है, यामें रहतो न दीसे कोई ए।
रहेसी रामजी रा साधवा, ज्यारे कुलवध्वा** न होई ए॥⁵⁸

* ओलगयो रामरो=प्रभु का प्रेमी। † विलग=भिन्न।

‡ विलोले=लहरों का उतार-चढ़ाव। § बेनइयां=बहनों। ¶ थांसु=तुमसे।

**कुलवध्वा=कुल की बाधा; उच्च कुल की भावना की रुकावट।

प्रतीक्षा

सतगुरु तथा प्रभु के दर्शन के लिए व्याकुल मीराबाई कहती हैं कि हे प्रभु, मैं आपकी बाट जोह रही हूँ। आप मेरे हृदयरूपी महल में कब आएँगे? यदि आप आज दर्शन नहीं देंगे तो प्रभात होते ही मैं अपना समस्त राजसी ऐश्वर्य त्याग दूँगी। हे सतगुरु, आप आकर मेरी सुधि लें, आपकी भेंट के लिए मैं प्रेम का प्याला लिए खड़ी हूँ। मेरी आत्मा निजनाम से जुड़ी हुई है और आप ही मेरे सर्वस्व हैं:

आज्यो आज्यो गोविन्दा म्हारे म्हाेल,
निहारौ थारी बाटड़ली खड़ी जी, म्हारे आज्यो॥
तन का त्यागूँ कापड़ा जी, ऊगंते परभात।
खड़ी जोवती राह में जी, सतगुरू पोंछे आय।
पियालो लियाँ हाज़िर खड़ी जी॥
साधु हमारी आत्मा जी, हम साधुन की देह।
रोम रोम में रम रही जी, ज्यूँ बादल में मेह।
सुरत हरि नाम से लगी जी॥
मीराँ हरि की लाडिली जी, तुम मीराँ के स्याम।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, दरसण द्यो म्हारे राम।
सुरत निज नाम से लगी जी॥⁵⁹

चितवो मेरी ओर

विरह में व्याकुल मीराबाई प्रभु को उलाहना देते हुए कहती हैं कि मैं निरंतर तेरा ही ध्यान और चिंतन करती रहती हूँ, परंतु तू इतना कठोर हृदय है कि एक क्षण के लिए भी मेरी ओर नहीं देखता। मुझे तो केवल

तेरी एक दृष्टि की ही आशा है, इसके सिवाय मुझे और कुछ नहीं चाहिए। हे प्रभु, मुझ जैसे तेरे लाखों प्रेमी हैं परंतु मेरे लिए तो एक तू ही है, तेरे दर्शन पर मैं अपने प्राण न्योछावर कर दूँगी:

तनक हरि चितवौ जी मोरी ओर॥
हम चितवत, तुम चितवत नाहीं, दिल के बड़े कठोर॥
मेरे आसा चितवनि तुमरी, और न दूजी दोर॥
तुम से हमकूँ एक होजी, हमसी लाख करोर॥
ऊभी ठाड़ी अरज करत हूँ, अरज करत भयो भोर॥
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, देखूँ प्राण अकोर॥⁶⁰

पानी में मीन प्यासी

परमात्मा की खोज में भटकते हुए लोगों पर व्यंग्य करते हुए मीराबाई कहती हैं कि बाहर उसकी तलाश करना उतना ही हास्यप्रद है जितना यह कहना कि पानी में मछली प्यासी है। पद के अंत में वे कहती हैं कि सहज के मार्ग द्वारा उन्होंने अपने अंतर में परमात्मा को प्राप्त कर लिया है:

पानी में मीन प्यासी, मोहे सुन सुन आवत हाँसी। (टेर)
आत्मज्ञान बिन नर भटकत है, कहां मथुरा कहां कासी॥
भवसागर सब हार भरा है, दूँढत फिरत उदासी॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सहज मिले अविनासी॥⁶¹

हरि है हृदय माहिं

परमात्मा मनुष्य के अंदर है परंतु उसके और आत्मा के बीच में मन और माया का परदा पड़ा हुआ है। मीराबाई प्रार्थना करती हैं कि हे स्वामी, अंतर का पट खोलकर मुझे दर्शन दे। तन, मन और आत्मा को तेरे प्रेम में

संजोकर मैं तेरे चरणों में नत होती हूँ। तेरे लिए मैंने कुल की लाज छोड़ दी है और तेरी बाँदी बन गई हूँ, कृपा कर और मुझे अपना ले:

जागो म्हारा जगपतिराइ, हँसि बोलो क्यों नहीं।
हरि थे छो जी हिरदा मांहि, पट खोलो क्यों नहीं। (टेर)
तन मन सुरति सँजोइ, सीस चरणों धरूँ।
जहाँ जहाँ देखूँ म्हारो राम, जहाँ सेवा करूँ॥
सदकै करूँजी सरीर, जुगै जुग वारणों।
छोड़ी छोड़ी कुल की लाज, साहिब तेरे कारणों॥
थोड़ी थोड़ी लिखूँ सिलाम, बहोत करि जाणज्यौ।
बंदी हूँ खानाज़ाद, महरि* करि मानज्यौ॥
हां हो म्हारा नाथ सुनाथ, विलम नहिं कीजियै।
मीराँ चरणां की दासी, दरस अब दीजियै॥⁶²

हरि-भजन की वेला

मनुष्य-जन्म परमात्मा की भक्ति करके मुक्ति प्राप्त करने का अवसर है, परंतु मनुष्य भक्ति की सही रीति को नहीं जानता। मीराबाई कहती हैं कि भक्ति का मार्ग और प्रभु का भेद वही जान सकता है जो स्वयं इस मार्ग को तय करके प्रभु से मिलाप कर चुका हो। ऐसा व्यक्ति प्रभु के निरंतर संपर्क में रहता है और हमें उस अगम धाम के वृत्तांत प्रदान कर सकता है।

संसार में साधक की रहनी कैसी होनी चाहिए, इस ओर संकेत करते हुए वे कहती हैं कि साधक को चाहिए कि वह संसार के गहरे पानी में न उतरे बल्कि किनारे पर बैठकर स्नान करे अर्थात् वह अपने सांसारिक कर्तव्य और उत्तरदायित्व निभाए, परंतु संसार में आसक्त न हो:

* महरि=मेहर, कृपा।

मारे हरि भज्यानी छे वेला रे,
भेदु* विना कोने कहीए।
भेदुड़ा† होय ते भेद पीछाणे संतो,
अगम नीगम नी खबरो लइए रे॥
उंडा रे नीर जोइने‡ मांहे ना धसीए संतो।
कांठडे§ बेठां बेठां नाहीए रे॥
मायानु रूप जोइने मन ना डगावीए संतो।
प्रभु थी प्रीत लगावीए रे॥
बाइ मीराँ कहे प्रभु गिरिधर केरा व्हाला॥
चरण कमल चित लइए रे॥⁶³

होली

मीराबाई मनुष्य-जन्म के महत्त्व की ओर संकेत करते हुए कहती हैं कि यह बसंत ऋतु के समान अल्प काल के लिए प्राप्त हुआ है। यह होली खेलने का अवसर है। किंतु उनकी होली दिव्य आत्मिक आनंद में लीन होना है। वे उन चेतन आत्मिक मंडलों में होली खेलती हैं जहाँ पर बिना वाद्य के संगीत हो रहा है, बिना स्वर के रागिनियाँ हो रही हैं और अनहद की दिव्य ध्वनि रोम-रोम में समा रही है। शील और संतोष का केसर घोलकर, प्रीति को पिचकारी में भरकर आत्मा आंतरिक मंडलों** में होली खेल रही है:

फागुन के दिन चार रे, होरी खेल मना रे॥

बिन करताल पखाबज बाजै, अनहद की झनकार रे।

* भेदु=भेद बतानेवाला। † भेदुड़ा=भेद को जाननेवाला।

‡ जोइने=देखकर। § कांठडे=किनारे। ¶ व्हाला=की प्रेमिन।

**प्रसिद्ध दार्शनिक और विचारक श्री आर. डी. रानाडे कहते हैं, 'इस पद में ध्वनि और रंग मीराबाई के आत्मिक अनुभव का एक उत्तम दृष्टांत हैं।' (पाथ वे टु गॉड इन हिन्दी लिट्रेचर, पृ. 194)

बिनि सुर राग छतीसूँ गावै, रोम रोम रणकार रे॥
 सील सँतोख की केसर घोली, प्रेम प्रीत पिचकार रे।
 उड़त गुलाल लाल भयो अंबर, बरसत रंग अपार रे॥*
 घट के पट सब खोल दिये हैं, लोक लाज सब डार रे।
 मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कैवल बलिहार रे॥⁶⁴

नयनों पर बलिहारी

भक्ति और प्रेम के इस गुजराती पद में मीराबाई कहती हैं कि मैं अपने स्वामी के नयनों पर बार-बार बलिहारी जाती हूँ। मेरे प्रभु ने मुझे हृदय से लगाकर अपना लिया है, अब उन्हें पल भर के लिए भी अलग नहीं होने दूँगी। उनके साथ मैं गहरे स्नेह के बंधन में बँध गई हूँ, अब मैं प्रेमपूर्वक उन्हीं का गुणगान करूँगी। अब मुझे सांसारिक काम-काज नहीं सुहाते और मैं अपने घर में ही आत्म-विस्मृत हो पागल के समान हो गई हूँ। मैं तो यही चाहती हूँ कि जैसे भी हो मुझे संतों का समागम मिले और जहाँ भी वे हों, मैं दौड़कर जाऊँ। गंगा-जमुना मेरे घर में ही हैं, अब मैं क्यों तीर्थों पर जाऊँ? संत के चरण अड़सठ तीर्थ हैं और उनकी चरणधूलि ही मेरे लिए त्रिवेणी स्नान है। अब एकादशी आदि व्रत क्यों करूँ, मैं तीन बार भोजन करती हूँ। वे कहती हैं कि प्रभु के प्रेम में ही उन्हें हरि-रस प्राप्त हो रहा है:

मारा नाथनां नैणाँ ऊपर रे, हुं तो घड़ीये वारी जावूँ।
 घड़ीये वारी जावूँ वालिड़ा, हुं तो घड़ीये वारी जावूँ॥
 प्रभुजी मने कंठे वलग्या। पलकोरे न थावूँ।
 शामला साथे स्नेह बंधाणो। हेते हरि गुण गावूँ॥
 काम काज मुंने काई न सूझे। ने घरमां घेली थावूँ॥

* यह त्रिकुटी के प्रकाश और शब्द की ओर संकेत है।

संत समागम जियां होय तियां। हरखे दोड़ी आवूँ॥
 गंगारे जमुना घरने आंगणे। तीरथ क्यां क्यां जावूँ।
 अडसठ तीरथ संतने चरणे। नित्य त्रिवेणी मां न्हावूँ॥
 एकादशी व्रत कोण करे। हुं तो त्रणे टाणा खावूँ।
 बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण। हेते हरि रस पावूँ॥⁶⁵

मनुष्य-जन्म

मनुष्य-जन्म परमात्मा की एक अनुपम देन है जो बार-बार नहीं मिलती। यह नाम का अभ्यास करने और आत्म-ज्ञान प्राप्त करने का अवसर है। मीराबाई कहती हैं कि मुझे सतगुरु मिल गए और उनकी कृपा से सत्य का बोध हो गया:

मनखा जनम पदारथ पायो, ऐसी बहुर न आती॥
 अबके मोसर* ज्ञान विचारो, रामनाम मुख गाती॥
 सतगुरू मिलिया सुंज पिछाणी†, ऐसा ब्रह्म मैं पाती॥
 सगुरा सूरु अमृत पीवे, निगुरा प्यासा जाती॥
 मगन भया मेरा मन सुख में, गोबिंद का गुण गाती॥
 साहब पाया आदि अनादि, नातर‡ भव में जाती॥
 मीराँ कहे इक आस आपकी, औराँ सूँ सकुचाती॥⁶⁶

नाम से नेह

इस छोटे-से पद के प्रारंभ में मीराबाई कहती हैं कि उनका परमात्मा के नाम से प्रेम हो गया है और उनका प्रियतम उनके अंतर में बस गया है। इस प्रकार वे परमात्मा और नाम की एकता प्रकट करती हैं।

* मोसर=अवसर। † सुंज पिछाणी=सूझ, सत्य का बोध। ‡ नातर=नहीं तो।

सभी संत कहते हैं कि नाम और नामी में कोई भेद नहीं है अर्थात् नाम और परमात्मा एक हैं:

हरि नाम से नेह लाग्यो रे,
अब लाग्यो रे म्हारे, हरि नाम से नेह लाग्यो॥
यो रसियो म्हारे मन में बसियो। ज्यूँ माला बिच तागो रे॥
सब में बसत सबहि से न्यारो। नहिं नेड़ो नहिं आगो रे*॥
दासी मीराँ शरण श्याम की। जीवन मरण भय भागो रे॥⁶⁷

गुरुपद-रज की प्यासी

गुरुपद-रज की प्यासी मीराबाई विरह-व्याकुल हो अपने गुरु से प्रार्थना करती हैं कि आपसे बिछुड़कर मैं असह्य दुःख पा रही हूँ, जिसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। जैसे जल के बिना मछली तड़पती है और चकवी रात्रि के समय अपने प्रिय के वियोग में व्यथित होती है, उसी प्रकार आपके दर्शन के बिना मैं व्याकुल हूँ। हे सतगुरु, आप मेरे जीवन में वह दिन कब लाएँगे जब आप मेरे अंतर में प्रकट होंगे:

म्हारा सतगुरु बेगा आज्योजी,
म्हारे सुख री सीर बुवाज्यो जी।† (टेक)
तुम बीछड़ियाँ दुख पाऊं जी, मेरा मन माँही मुरझाऊं जी॥
मैं कोइल ज्यूँ कुरलाऊं जी, कछु बाहरि कहि न जणाऊं जी॥
मोहि बाघण विरह सतावे जी, कोई कहियां पार न पावै जी॥
ज्यूँ जल त्यागा मीना जी, तुम दरसन बिन खीना जी॥
ज्यूँ चकवी रैन न भावै जी, वा ऊगो भाण‡ सुहावै जी॥

* नहिं...रे=न पास है न दूर है।

† म्हारे...जी=मेरे अंतर में मिलनरूपी सुख का बीज बोइए।

‡ ऊगो भाण=उगा हुआ सूर्य।

ऊ दिन कबै करोला जी, म्हारे आँगण पांव धरोला जी॥
अरज करै मीराँ दासी जी, गुरुपद-रज की प्यासी जी॥⁶⁸

विरह-बाण

कबीर साहिब अपने दोहों में कहते हैं कि सतगुरु ने मुझे शब्द का बाण मारा है और मैं 'मृत' हो गया हूँ। यहाँ दो पदों में मीराबाई इसी भाव को प्रकट करती हैं। सतगुरु ने उन्हें विरह में बुझे हुए तीर से घायल कर दिया है, वे अपने तन की सुधि खो चुकी हैं और केवल अंतर में गुरु के मिलाप की राह देख रही हैं। वे कहती हैं कि इस भेद को कोई नहीं जानता कि वास्तव में सतगुरु ने उन्हें ऐसी औषधि दी है जिसके द्वारा संसार की ज्वाला में तप्त उनके तन, मन और प्राणों में शीतलता और शांति आ गई है:

भर मारी रे बाना मेरे सतगुरु बिरह लगाय के। (टेर)
पाँवन पंगा कानन बहिरा, सूझत नाँही नैना॥
खड़ी खड़ी रे पंथ निहारूँ, मरम न कोई जाना॥
सतगुरु ओषध ऐसी दीन्ही, रूम रूम* भई चैना॥
सतगुरु जस्या बैद न कोई, पूछो बेद पुराना॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, अमरलोक में रहना॥⁶⁹

दूसरे पद में मीराबाई उसी भाव को प्रकट करते हुए कहती हैं कि विरह की व्याकुलता उन्हें अपने सतगुरु से प्राप्त हुई है। उनका मन जो निरंतर गतिशील और चंचल था अब प्रेमरूपी जंजीर में बँधकर स्थिर हो गया है:

* रूम रूम=रोम-रोम।

री मेरे पार निकस गया, सतगुरु मार्या तीर। (टेक)
 विरह-भाल लागी उर-अंतरि, ब्याकुल भया सरीर॥
 इत-उत चित चलै नहिं कब हूँ, डारी प्रेम-जँजीर॥
 कै जाणै मेरो प्रीतम प्यारो, और न जाणै पीर॥
 कहा करूँ मेरो बस नहिं सजनी, नैन झरत दोउ नीर॥
 मीराँ कहै प्रभु तुम मिलियाँ बिन, प्राण धरत नहिं धीर॥⁷⁰

सतगुरु की शरण

मीराबाई कहती हैं कि बिना सतगुरु की शरण के जीव परमपद प्राप्त नहीं कर सकता और न ही नाम के बिना वह इस चौरासी के चक्कर से मुक्त हो सकता है। परंतु मूर्ख प्राणी संतों की संगति पसंद नहीं करता और नाम से विमुख रहता है। इस प्रकार वह अपने कर्मों के बोझ को और बढ़ाता है तथा अनेक प्रकार के दुःख पाता है:

रमइया बिनि यो जिवड़ौ दुख पावै, कहौ कुण* धीर बँधावै। (टेक)
 यौ संसार कुबधि† को भांडो, साध संगति नहीं भावै॥
 राम नाम की निंदा ठाँगे, करम अकरम हि कुमावै॥
 राम नाम बिन मुक्ति न पावै, फिर चौरासी जावै॥
 साध संगत में कबहुँ न जावै, मूर्ख जनम गँमावै॥
 जन मीराँ सतगुर के सरणें, जीव परमपद पावै॥⁷¹

प्रभु राख लई है

संतों की संगति और परंपरागत पूजा-पाठ के विरुद्ध आचरण करने के लिए मीराबाई को लोकनिंदा और राणा का विरोध सहना पड़ा, यहाँ तक

* कुण=कौन। † कुबधि=कुबुद्धि।

कि राणा ने उन्हें विष देकर मारने की कोशिश की। इस पर वे उन्हें संबोधित करते हुए कहती हैं कि मैं अपने संत-सतगुरु पर तन-मन वारती हूँ जिनकी कृपा द्वारा आपके विष ने मुझ पर कोई असर न किया और मैं इस परीक्षा में से इस प्रकार निकली जिस प्रकार सोना अग्नि में से शुद्ध होकर निकलता है। अब प्रेम का बाण मेरे हृदय को इतना गहरा बेध चुका है कि किसी प्रकार निकल नहीं सकता:

राणाँजी तें जहर दियो मैं जाणी। (टेक)
 जैसे कंचन दहत अग्नि में, निकसत बाराबांणी॥
 लोकलाज कुलकाण जगत की, दी बहाय ज्यूँ पांणी॥
 अपने घर* का परदा कर लो, मैं अबला बौरांणी॥
 तरकस तीर लग्यो मेरे हियरे, गरक गयो सनकांणी॥
 सब संतन पर तन मन वारों, चरण कमल लपटांणी॥
 मीराँ को प्रभु राख लई है, दासी अपनी जाणी॥⁷²

बाने का बिरद

जब भी परमात्मा मनुष्य चोला धारण कर गुरु के रूप में प्रकट होते हैं तो भक्त उन्हें याद दिलाते हैं कि जो बाना उन्होंने धारण किया है, उसका बिरद रखें और अपने भक्तों को तारें। परंतु मीराबाई कहती हैं कि मनुष्य को भी भक्ति का बाना पहनकर सच्चे भक्त का कर्तव्य निभाना चाहिए। यह मार्ग सरल नहीं है और न ही मुक्ति की प्राप्ति कोई खेल है। भक्त को अपना तन, मन और धन न्योछावर करके सभी कठिनाइयों को सहते हुए प्रेम और विश्वास के साथ आगे बढ़ना चाहिए। एक बार इस मार्ग पर पैर रखने के बाद पीछे नहीं हटना चाहिए:

* भाव=कुल का

बानारो बिड़द दुहेलो रे॥

बानो पहर कहा गरबायो, मुक्ति न होसी खेलो रे॥

बानारो प्रण प्रहलाद उबार्यो, बैर पिता से झेल्यो रे॥

आगा धर पीछा मत ताको*, दफतर नाहिं चढैलो रे†॥

मीराँजी ने भक्ति कमाई, जहर पियालो झेल्यो रे॥⁷³

सूरत देख लुभानी

इस छोटे पद में मीराबाई अपने सतगुरु से दर्शन देने के लिए प्रार्थना करती हैं। सतगुरु के स्वरूप के एक बार के दर्शन से वे मोहित हो गई हैं और दिन-रात उनके मिलाप के लिए तरस रही हैं:

मिलता जाज्यो हो गुरुज्ञानी, थॉरी सूरत देखि लुभानी॥

मेरो नाम बूझि तुम लीज्यो, मैं हूँ बिरह दिवानी॥

रात दिवस कल नाहिं परत है, जैसे मीन बिन पानी॥

दरस बिना मोहिं कछु न सुहावे, तलफ तलफ मर जानी॥

मीराँ तो चरनन की चरी, सुन लीजे सुखदानी॥⁷⁴

व्याकुल मीरा

इस पद में भी मीराबाई अपनी विरह-वेदना प्रकट करते हुए कहती हैं कि वे प्रभु-मिलाप के लिए निरंतर तड़प रही हैं और क्षण भर के लिए भी उन्हें चैन नहीं मिलता। दिन-रात वे अपने प्रियतम का पंथ निहार रही हैं और अपनी सुधबुध खो बैठी हैं:

* आगा...ताको=आगे पैर रखकर पीछे न देखो अर्थात् भक्ति के मार्ग में पैर रखने के बाद पीछे संसार की ओर ध्यान न दो।

† दफतर...रे=प्रभु के धाम में स्वीकार नहीं हो सकेगा।

राम मिलण के काज सखी, मेरे आरति उर जागी री। (टेक)

तलफत तलफत कल न परत है, बिरह-बाण उर लागी री।

निस दिन पंथ निहारूं पीव को, पलक न पल भरि लागी री॥

पीव पीव मैं रटूं रात दिन, दूजी सुधि बुधि भागी री।

बिरह-भुवंग* मेरो डसो है कलेजो, लहरि हलाहल जागी री॥

मेरी आरति मेटि गुसाई, आइ मिलौ मोहिं सागी† री।

मीराँ ब्याकुल अति अकुलाणी, पिय की उमंग अति लागी री॥⁷⁵

प्रभु का वरण

मनुष्य-जन्म का अवसर पाकर जीव को चाहिए कि वह परमात्मा का मिलाप प्राप्त करे। अपने अन्य पदों की भाँति इस गुजराती पद में भी मीराबाई परमात्मा की प्राप्ति को आत्मा का विवाह कहती हैं। पद का भाव इस प्रकार है: हे सखी, उस अजन्मे, अनादि वर का वरण कर जो कभी जन्म-मरण में नहीं आता; किसी दूसरे के साथ प्रीति न कर। मनुष्य-जन्म का तुझे अवसर मिला है, यह मूल्यवान संपत्ति परमात्मा ने तुझे दी है। अब देर क्यों करती है? इस अवसर का लाभ उठा। कोई वेदों की दुहाई देता है, कोई तर्क-वितर्क करता है तो कोई निंदा-स्तुति। हे सखी, इन सब व्यर्थ की बातों को लेकर तू सुखी और दुःखी क्यों होती है, तू भक्ति और प्रेमरूपी वह बाँगड़ी‡ पहन जो कभी टूटती नहीं और जो न कभी दिखाई ही देती है। तू सुहाग की वह चुनरी ओढ़ जो कभी मैली नहीं होती, न कभी फटती है और जिसका रंग भी कभी नहीं उड़ता। तू उस लोक को अपना ससुराल बना जहाँ सुख तथा दुःख की धूप-छाँह नहीं है और जहाँ न काम, क्रोध, तृष्णा आदि की अग्नि है और न ही संसार के क्लेशों का ताप। तू नामरूपी नौका में बैठकर सहज ही भवसागर को पार कर ले और जब तक इस संसार में है निश्चित और निर्भय होकर

* बिरह-भुवंग=विरहरूपी सर्प। † सागी=जल्दी।

‡ बाँगड़ी=एक प्रकार की मोटी चूड़ी, चूड़ा।

रह। मीराबाई कहती हैं, हे प्रभु, मैं तेरे ऊपर बलिहारी जाती हूँ, मुझे एकमात्र तेरी ही आस है, तू कृपा कर और मेरे मनुष्य-जन्म को सार्थक कर दे:

अणजायो वर वरिये रे हो बेनी मारे॥
 बीजा थी न प्रीति करिये रे॥
 मनुष्य जनम टाणुं मल्युं, सहियर मोघुं नाणुं॥
 वार हवे शानी करिये रे हो॥
 कोई वेद वाणी बोले, कोई फावे तेम छोले॥
 हरष शोक शाने करिये रे हो॥
 भाँगे नहीं फूटे नहीं, बुड़ीजे देखाय नहीं॥
 बँगडियो तो एवी धरिये रे हो॥
 फाटे नहीं टूटे नहीं, रंग जेनो जाय नहीं॥
 चुँदड़ियो तो एवी धरिये रे हो॥
 सुख दुःख टाढ़ तड़को, न थी ज्याँ आगनो भड़को॥
 सासरियाँ तो एवा करिये रे हो॥
 हरि नाम नी होड़ी करिये, स्हेजे भवसागर तरिये॥
 भर दरिये मोजां करिये रे हो॥
 मीराँ के हूँ बलिहारी, आशा म्हेने एक तारी॥
 जनम सफल करिये रे हो॥⁷⁶

बिछुरत प्राण तजे

ऊदाबाई को संबोधित करते हुए मीराबाई कहती हैं कि केवल प्रेम-प्रेम दोहराते रहने से कुछ नहीं होता। प्रेम अंतर की वह भावना है जिससे प्रेरित होकर प्रेमी अपना तन, मन, धन और सर्वस्व उस प्रीतम पर वार देता है। मछली, मृग और पतंगे की आत्माहुति का उदाहरण देते हुए वे कहती हैं कि उनकी ऐसी ही प्रीति अपने गुरु से लग गई है और उनका चित्त उन्हीं के चरणों में लीन रहता है:

अरी एरी ऊदाँ लागी का नाम न लेय। (टेर)
 जल से प्रीति करी मछली ने, बिछुरत प्राण तजे॥
 मृगाँ की प्रीति लगी नादाँ से, सनमुख सेल सहे॥
 दीपक से प्रीत लगी पतंग की, वार फेर जिय दे॥
 मीराँ की प्रीति लगी है संतो से, गुरु चरणों चित दे॥⁷⁷

भक्ति की दृढ़ता

यह पद मीराबाई और ऊदाबाई के बीच वार्तालाप के रूप में है। ऊदाबाई, मीराबाई को संतों की संगति छोड़ने के लिए कहती है। वे उत्तर देती हैं कि संत और परमात्मा दोनों एक हैं, जैसे फूल और उसकी सुगंध। यह मार्ग मुझे मेरे सतगुरु ने दिया है, इसे मैंने अपना सिर देकर प्राप्त किया है, अब चाहे कोई लाँछन लगाए, हँसी उड़ाए या निंदा करे, मैं इसे नहीं छोड़ूँगी:

म्हे तो करस्यांजी प्रीत लगाया संगत साधां री॥
 हरिजन हरि तो एक हेरे फूल वास दो नांय।
 अरस परस ऐसे मिले जैसे धिरत दूध के मांय॥
 भाभी मीराँ सुनो कान दे समझो मन के मांय।
 साधां रो संग छोड़ दीजो मती मांके* लाँछन लगाय॥
 यो मारग म्हाने नीठ मिल्यो छे सतगुरु दियो बताय।
 माथा साटे† धारण कीदो कूँकर छोड़यो जाय॥
 जनम बड़ो घर पावियो, थूँ आई बड़ा घर मांय।
 मूँढ मुलक री‡ काई जाणे थूँ राजरीत टुकराय॥
 भगति बिना टुकराई झूठी माने नहीं सुहाय।
 राजपाट सब धरिया रेसी जलसी जंगल मांय॥

* मांके=हमारे। † माथा साटे=बदले। ‡ मुलक री=देश की।

लोग दुनियां थारी निंदा करे छे सारा सेर* के मांय।
 कुटम कबीला थारी हांसी ठाने हिल मिल निंदा गाय॥
 निंदा म्हारी भले ही करजो लेसी पलो बिछाय†।
 बिना साबुन और पाणी के सबहि मेल धुल जाय॥
 धन धन है मीराँ बड़भागण हरिसूँ हेत लगाय।
 बार बार म्हे करूँ बीनती दुष्ट रया पछताय॥⁷⁸

नाम-रस

इस पद में मीराबाई जिज्ञासुओं को प्रेरणा देती हैं कि वे कुसंगति को त्यागकर सत्संग में जाएँ। संतों की संगति में नाम के रस का पान करें, काम, क्रोध, मद, लोभ और मोह को त्यागकर प्रभु के रंग में रँग जाएँ:

राम नाम रस पीजे मनुआ, राम नाम रस पीजे। (टेक)
 तज कुसंग सतसंग बैठ नित, हरि चरचा सुण लीजे॥
 काम क्रोध मद लोभ मोह कूँ चित्त से बहाय दीजे॥
 मीराँ के प्रभु गिरधरनागर, ताहि के रँग में भीजे॥⁷⁹

शब्द सरोवर धँसी

भक्ति के मार्ग को अन्य संतों की भाँति मीराबाई भी तलवार की धार कहती हैं। लोग इस मार्ग को अपनानेवाले की हँसी उड़ाते हैं, उसे विक्षिप्त और कुल का कलंक कहते हैं, परंतु वे कहती हैं कि मैं तो अपने प्रियतम के नाम में रम गई हूँ और भक्ति के द्वारा शब्द के सरोवर में समा गई हूँ:

* सेर=शहर। † लेसी...बिछाय=प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करूँगी।

मेरे मन राम नामा बसी। (टेक)
 तेरे कारण स्यामसुन्दर, सकल लोगां हँसी॥
 कोई कहे मीरां भई बौरी, कोई कहे कुल नसी॥
 कोई कहे मीरां दीप आग री, नाम पिया सूँ रसी॥
 खांडे धार भक्ति की न्यारी, काटिहै जम की फँसी॥
 मीराँ के प्रभु गिरधरनागर, सब्द सरोवर धँसी॥⁸⁰

नाम मन बसिया

मीराबाई इस पद में कहती हैं कि प्रभु का नाम मेरे मन में बस गया है और मैं नाम के अभ्यास द्वारा अपने प्रियतम को रिझाऊँगी। हे सखी, मैं विरहरूपी पिंजरे की बाधा को हटाकर, दुर्मति को दूर करके तथा मन को मार कर सतगुरु से मिलाप प्राप्त करूँगी:

राम नाम मेरे मन बसियो रसियो राम रिझाऊँ ए माय।
 मैं मंदभागण करम अभागण कीरत कैसे गाउँ ए माय॥
 बिरह पिंजर की बाड़ सखी री उठ कर जी हुलसाउँ ए माय।
 मन कूँ मार सजूँ* सतगुरु सूँ दुरमत दूर गमाउँ ए माय॥
 डंको नाम सुरत की डोरी कड़ियाँ प्रेम चढ़ाउँ ए माय।
 प्रेम को ढोल बण्यो अतिभारी मगन होय गुण गाउँ ए माय॥
 तन करूँ ताल मन करूँ ढफली सोती सुरति जगाउँ ए माय।
 निरत करूँ मैं प्रीतम आगे तो प्रीतम पद पाउँ ए माय॥
 मो अबला पर किरपा करज्यो गुण गोविन्द का गाउँ ए माय।
 मीराँ के प्रभु गिरधर नागर रज चरणन की पाउँ ए माय॥⁸¹

* सजूँ=मिलूँ।

बैरन नींद

अभ्यासी के मार्ग में निद्रा एक बहुत बड़ी बाधा है। भजन के समय यह उसे सुस्त बनाती है और मनुष्य-जन्म के अनमोल समय को बेसुधि में नष्ट कर देती है। परमार्थ की दृष्टि से भी जीव युगों-युगों से परमात्मा की ओर से सोया हुआ है और दुनिया की मोह-माया के प्रति सचेत है। मीराबाई इस पद में निद्रा की बाधा को दूर करने की भावना को व्यक्त करते हुए कहती हैं, हे निद्रा, तू मेरी बैरिन है, मैं तुझे हाट में बेचूँगी। सोते-सोते मेरे असंख्य युग बीत गए हैं। तू उस घर में जाकर अपना डेरा लगा जहाँ प्रभु का कोई भक्त न हो; मैंने तो अपने प्रियतम को नयनों में बसा रखा है, तेरे लिए यहाँ कोई स्थान नहीं है:

नीदड़ली थाने बेच छूँ जे थारो गायक होय॥

नीदड़ली बेरणा बेच छूँ॥ टेरे

पीसै सेर टकै पंसेरी, रिपिया री मण दोय॥

हेला* दे-दे गायक तैडू†, घालूँ उधारी तोय॥

बीच बजार बिछायत माडूँ, ऊँ ची खोलूँ हाट॥

दे दे झोला बधती तोलूँ, बधता राखूँ बाट॥

सोवत सोवत सब दिन बीत्या, दियो जमारो खोय॥

नितरा‡ बैरण तां घर जावो, राम भगत नाँ होय॥

आयो साजन मुड़ गयो रे, मैं बैरण रही सोय॥

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, राखी नैण समय॥⁸²

* हेला=पुकार। † गायक तैडू=ग्राहक बुलाऊँ।

‡ नितरा=नित्य की।

कंगन

प्रभुप्रेम में लीन आत्मा सांसारिक वासनाओं तथा धंधों में आसक्त नहीं होती। उसके तन, मन, धन और प्राण केवल प्रियतम हैं। इसी भाव को मीराबाई एक कन्या के विवाह के रूपक द्वारा प्रस्तुत करती हैं। आत्मारूपी वधू कहती है कि मैं किसी दूसरे का कंगन* नहीं पहनूँगी। मेरा तो मेरे प्रिय प्रभु के साथ परिणय हो गया है और मैं उन्हीं का कंगन पहनती हूँ। मेरे सतगुरु ने ज्ञान का गुड़ मुझे खिलाया है और प्रेम की वरमाला पहनाई है। पवन के समान चंचल मन को बाँधकर गुरु ने उससे विवाह मंडप रचा है और तन का तोरण बनाया है। सतगुरु ने मेरे हाथों में सत्य का कंकण बाँधा है जिसे कोई भी खोल नहीं सकता। धर्म के मार्ग पर चलनेवाले बाराती (साध-संगत) इस संबंध से प्रसन्न हैं। मैंने ऐसा पति पाया है जो अजर और अमर है। मीराबाई कहती हैं कि मेरा कंगन प्रभु का उपहार है और प्रार्थना करती हैं कि हे प्रभु, मुझे संत-चरण का वास प्रदान करो:

नहीं बांधू मीढल, बीजाना मीढल नहीं बांधु।

हुं तो परणी मारा पियुजी नी साथ॥

ज्ञान ना गोल गुरूए मुख मांहि दीधो, प्रेम नी घाली वरमाल॥

मन पवन नो गुरूए मांडवो बंधाव्यो, तनड़ा ना बांध्या छे तोरण॥

सत्य नां कंकण मारा गुरूजीए बांध्यां, एनो कोण छोडावनार॥

धर्म ना धोरी मारां प्रसन्न जानैया, हुँ तो अमर पामी भरथार॥

बाई मीराँ ने मीढल छे श्री रामनां, देजो तमे साधु चरणे वास॥⁸³

* कंगन=गुजराती में इसे मीढल कहते हैं, यह धागे में मेवे को पिरोकर बनाया जाता है तथा विवाह के समय दुलहन के हाथ में बाँधा जाता है, कंकण।

इस काया में

इस गुजराती पद में मनुष्य के शरीर में निरंतर गूँजनेवाले शब्द तथा अंदर के रूहानी मंडलों के दृश्यों का संकेत करते हुए मीराबाई कहती हैं कि हे मनुष्य, तेरे शरीर में निरंतर घंटे की ध्वनि गूँज रही है। तेरी इस दस द्वारों वाली काया में (दसवें द्वार अथवा तीसरे तिल में) शब्द की धुन हो रही है। इस शरीर के अंदर ही विभिन्न रूहानी मंडल, बाग, बगीचे आदि हैं जिनका रस आत्मारूपी भ्रमर ग्रहण कर सकता है। इस काया में निरंतर जोत जल रही है जिसके उज्ज्वल प्रकाश के बिंब में से धुन गूँज रही है। वे कहती हैं कि केवल संत ही उस अमरपुर का वृत्तांत जानते हैं जो प्रभु का धाम है:

वागे छे रे वागे छे तारी काया, मां घड़ीयाल* वागे छे॥
आरे काया ना दश दरवाजा, नित नी नौबत गाजे छे॥
आरे काया मां बाग बगीचा, भमरो सुगंधी मांगे छे॥
आरे काया मां जोत जले छे, तेजना बीबकार वागे छे॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, सन्तो अमरापुर म्हाले छे॥⁸⁴

वेग पधारो

विरह और प्रेम के इस शब्द में मीराबाई कहती हैं कि हे प्रियतम, तेरी याद में और तेरे मिलाप के लिए मैं निरंतर तड़प रही हूँ। कृपा कर मुझे दर्शन दे। मैं तेरी शरण में आई हूँ, मुझे अपना ले। इस बार यदि तू मिल जाए तो तुझे एक पल के लिए भी अपने से बिछुड़ने न दूँगी। जैसे कोई व्यक्ति बहुमूल्य रत्न पा लेने पर उसे हाथ में बंद कर लेता है, उसी प्रकार

* घड़ीयाल=घंटा।

मैं तुझे अपने से दूर न होने दूँगी। अपने हृदयरूपी मंदिर में तुझे मेहमान की तरह रखूँगी:

ओल्यूँ* थारी आवे हा मिलवा की साजनिया॥
बिछरन दूँगी पाय पलक में, राखूँ हथमनिया॥
आप महाराज को बिरद लजेलो, सुणजो साजनिया॥
याद करूँ जब वेग पधारो, राखूँ पावनिया॥
किरपा कीजो दर्शन दीजो, शरणे काजनिया॥
भर्याँ समंद में बही जात हूँ, कोई न राखनिया॥
मीराँ के प्रभु हित कर लीजो, गिरधर से धनिया॥⁸⁵

बैरागिन

मीराबाई भेषधारी संन्यासी और बैरागियों के मार्ग का खंडन करते हुए कहती हैं कि सच्चा वैराग्य अंतर का है, बाहरी भेष अथवा दिखावे का नहीं। वे कहती हैं कि मैं प्रभु की बैरागिन बनूँगी और उसी भेष अथवा करनी को अपनाऊँगी जो मेरे साहिब को पसंद हो। बाहरी त्याग के स्थान पर मैं अंतर में शील, संतोष आदि गुणों को धारण करूँगी और सुख-दुःख, हर्ष-शोक आदि को समता-भाव से अपनाऊँगी। गेरुए वस्त्रों के स्थान पर मैं अपने तन-मनरूपी वस्त्र को गुरु के ज्ञान में रँगूँगी। कानों में योगियों वाली मुद्रा पहनने के स्थान पर मन को अनुशासन रूपी मुद्रा पहनाऊँगी। ऐसी बैरागिन बनकर मैं संतों के साथ रहूँगी:

बाला मैं बैरागण हूँगी।
जिन भेषाँ म्हारो साहिब रीझे, सोही भेष धरूँगी॥
सील संतोष धरूँ घट भीतर, समता पकड़ रहूँगी॥

* ओल्यूँ=तीव्र याद जो निरंतर बनी रहती है।

जाको नाम निरंजन कहिये, ताको ध्यान धरूँगी॥
 गुरु के ज्ञान रँगूँ तन कपड़ा, मन मुद्रा पैरूँगी।
 प्रेम-प्रीत सँ हरिगुण गाऊँ, चरणन लिपट रहूँगी।
 या तन की मैं करूँ कींगरी, रसना नाम कहूँगी।
 मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, साधौँ सँग रहूँगी॥⁸⁶

मन माने जब तार

मीराबाई कहती हैं कि संसार-सागर को वे अपने आप पार नहीं कर सकतीं। वे योग, यज्ञ, जप, तप आदि क्रियाएँ नहीं करतीं, उन्होंने तो नामरूपी सारवस्तु को अपना लिया है। वे प्रभु से प्रार्थना करती हैं कि उन्हें इस संसार-सागर से पार करें पर साथ ही शरण की भावना सहित कहती हैं कि प्रभु उन्हें तभी तारें जब और जैसी उनकी मौज हो:

मन माने जब तार प्रभुजी॥
 नदिया गहरी नाव पुरानी। किस विध उतरूँ पार॥
 वेद पुरान बखानी महिमा। लगे न गुण को पार॥
 योग याग जप तप नहीं जानूँ। नाम निरंतर सार॥
 बाट तकत हौँ कबकी ठाड़ी। त्रिभुवन पालन हार॥
 मीराँ के प्रभु गिरधर नागर। चरण कमल बलिहार॥⁸⁷

आज प्रभु मेरे घर रे

इस सरल पद में मीराबाई प्रियतम के मिलाप के आनंद का वर्णन वर्षा ऋतु में प्रकृति की छटा द्वारा करती हैं। वे कहती हैं, अब मेह चाहे कितना ही बरसता रहे मुझे चिंता नहीं क्योंकि आज मेरे प्रियतम मेरे पास हैं। मेघ घिर आए हैं और ग्रीष्म ऋतु से सूखे हुए सरोवर भर गए हैं।

इसी प्रकार बहुत दिनों के विरह ताप के बाद मैंने आज प्रियतम का मिलाप पाया है:

मेहा बरसवो करे रे, आज तो रमैयो मेरे घरे रे।
 नान्हीं नान्हीं बूँद मेघ घन बरसे, सूखे सरवर भरे रे॥
 बहुत दिनाँ पे प्रीतम पायो, बिछुड़न को मोहिं डर रे।
 मीराँ कहे अति नेह जुड़ायो, मैं लियो पुरबलो वर रे॥⁸⁸

सोने में सुहागा

इस पद में मीराबाई कहती हैं कि वे अपने संत-सतगुरु से इस प्रकार एक हो गई हैं जैसे सोने में सुहागा होता है। अब लोग चाहे उनकी कितनी ही निंदा करें, वे अपने मार्ग से नहीं हटेंगी। वे युगों-युगों से अज्ञानरूपी अंधकार में सोई पड़ी थीं, सतगुरु ने आकर उन्हें चिताया। अब उनके जन्म-मरण अथवा आवागमन का भय दूर हो गया है:

कोई कछू कहे मन लागा रे॥
 मीराँ तो संतों में मिल गयी, ज्यों सोने में सुहागा रे॥
 मीराँ जी तो ऐसी मिल गयी, ज्यों गुदड़ी में धागा रे॥
 लोग कहे मीराँ बिगड़ चुकी है, वांका* भरम वांने† खागा रे॥
 हंस की चाल हंस ही जाने, क्या जानेगा कागा रे॥
 मीराँ तो सूती श्याम भवन में, सतगुरु आय जगागा रे॥
 मानुष जन्म ले हरि नहीं गायो, काल उसको खागा रे॥
 सतसंगत और राम भजन कर, जन्म-मरण भौ भागा रे॥
 मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, जन्म-मरण भव भागा रे॥⁸⁹

* वांका=उनका; † वांने=उनको।

तोही से लागो नेह

इस पद में मीराबाई प्रियतम से प्रार्थना करती हैं कि उनका प्रेम तोड़ें नहीं बल्कि उसमें निरंतर वृद्धि करते रहें। अगली पंक्तियों में वे प्रेम, विरह तथा सांसारिक प्रेम और प्रभुप्रेम में अंतर का वर्णन करते हुए सतगुरु के मिलाप के आनंद पर पद को समाप्त करती हैं:

रमैया मेरे अब तोही सूं लागो नेह।
लागी प्रीत जिन तोड़े रे वाला, अधिकौ कीजै नेह॥
जौ हूं ऐसी जाणती रे वाला, प्रीत कियौ दुःख होय।
नगर ढंढोरा फेरती रे, प्रीत करो मत कोय॥
खीर न खाजै आकरी* रे, मुख न कीजै मित†।
खिण ताता‡ खिण सीलवा§ रे, खिण बैरी खिण मित॥
प्रीत करे ते बावरा रे, करि तोड़े ते कूर¶॥
प्रीत निभावण दल के थंभण**, ते कोइ बिरला सूर॥
तुम गज गिरी को चूतरो रे, हम बालू की भीत।
अब तो म्यां†† कैसे बणे रे, पूरब जनम की प्रीत॥
एके थाणे रोपीया रे एक आंबा एक बूल।
वांको रस नीकौ लगे रे वाको लागै सूल॥
ज्यूं डूंगर‡‡ का व्हाला रे, यूं ओछा तणा सनेह§§।
बहता बहे जी उतावला रे, वे तो झटक बतावे छेह¶¶॥

* आकरी=बहुत गरम। † मित=मित्र। ‡ खिण ताता=क्षण में गरम।

§ खिण सीलवा=क्षण में शीतल। ¶ कूर=क्रूर, निर्दयी।

** थंभण=पक्का चबूतरा। †† म्यां=तुममें और मुझमें।

‡‡ डूंगर=पहाड़ी नाला। §§ यूं..सनेह=ओछों का अर्थात् संसारियों का स्नेह।

¶¶ छेह=एकाएक सूख जाता है।

आयो सावन भादवो रे वाला, बोलन लागी मोर।
मीराँ कूँ हरिजन मिल्या रे, लेगिया पवन झकोर॥⁹⁰

जब भई खाक बराबर

इस पद में मीराबाई अपने प्रियतम प्रभु के मिलाप का वर्णन करते हुए कहती हैं कि जब तक उनमें मान और अभिमान की भावना थी प्रियतम ने उनसे बात तक न की; परंतु जब अपने अहं को खाक में मिलाकर वे दीन बनीं तो प्रभु ने अंतर के पट खोल दिए, वियोग की दूरी का अंत कर दिया और मिलाप का दिव्य आनंद प्रदान किया:

राम रंग लागो, मेरे दिल को धोको भागो॥
जब थी बन्दी मान गुमानी, पीजी मुखउ न बोलो।
अब भई बन्दी खाक बराबर, साहिब अन्तर खोलो॥
पीजी बोलो, अन्तर खोलो, सेजड़ियां सुख दीनो।
मैं अपने प्रीतम संग राजी, प्रेम पियालो पीनो॥
लोक लाज कुल की मरजादा, तोड़ दियो सोइ धागो।
हरीजनों ने हरी मिले, ज्यूं सोनो मिल्यो सुहागो॥
साँचे से मेरा साहिब राजी, झूठे से मन भागो।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, भाग हमारो जागो॥⁹¹

प्रियतम का समाचार

अपनी विरह-व्यथा व्यक्त करते हुए मीराबाई कहती हैं कि मैं अपने प्रियतम का समाचार किससे पूछूँ? प्रियतम का निवास संसाररूपी सागर के पार है, रास्ते में अनेक दुर्गम घाटियाँ, पहाड़ आदि हैं, मैं उनका संदेश कैसे प्राप्त करूँ? जिस प्रकार मोतियों के हार के टूटने पर एक-एक मोती

बिखर जाता है, उसी प्रकार मेरे नेत्रों से अश्रु बह रहे हैं और मेरे वस्त्र भीग रहे हैं। अगर मैं सोती हूँ तो नींद नहीं आती और जागती हूँ तो विरह सताता है। वे कहती हैं कि हे प्रभु, मैं तेरे गुणों का निरंतर चिंतन करती रहती हूँ और मेरा ध्यान तेरे चरणों में लगा है:

केने पूछां केने रे पूछां शामलियानां, समाचार बाई केने पूछां॥
आड़ारे डूंगर पहाड़ घणा रे वाला, वालीड़ा* वसिया दरिया पार॥
नेण झरेने कच्छवा भीजे रे व्हाला, हरखे ने टूटे माल्यो हार॥
सूवां तो म्हांने निन्द्रा न आवे व्हाला, ऐ जागतड़ाना जंजाल॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, हरि चरणां में म्हारों ध्यान॥⁹²

नैना रस पीजै

प्रेम की मधुर भावनाओं से परिपूर्ण इस पद में मीराबाई प्रियतम के दर्शन के आनंद को प्रकट करती हैं। वे अपनी सहेलियों से कहती हैं कि ऐसे सुंदर प्यारे प्रभु को अब अपने नेत्रों से दूर न जाने दें। उन पर तन, मन, धन और सर्वस्व न्योछावर करके उनके स्वरूप को अपने हृदय में धारण कर लें। आओ सखियों, हम उनके सुंदर मुख को देखती ही रहें और अपने नयनों से उनके सौंदर्य का पान करती रहें। जिस प्रकार भी हमारा प्रभु हमसे रीझे और प्रसन्न हो हम वही करें:

ऐसे प्रभु जाण न दीजै हो।
तन मन धन करि वारणै, हिरदै धरि लीजै हो॥
आव सखी मुख देखिये, नैणां रस पीजै हो।
जिह जिह विधि रीझै हरि, सोई विधि कीजै हो।

* वालीड़ा=प्रियतम।

सुन्दर श्याम सुहावणा, मुख देख्याँ जीजै हो।
मीराँ के प्रभु रामजी, बड़ भागण रीझै हो॥⁹³

वृक्ष की टेव

भक्त को चाहिए कि वह दयावान, उदार और सहिष्णु बने। संसार के सुख-दुःख, हर्ष-शोक आदि को निर्विकार भाव से सहन करे। मीराबाई एक वृक्ष का उदाहरण लेकर भक्त को दृढ़ता और सहिष्णुता की प्रेरणा देती हैं:

मना तू तो वृक्षन की लत लेइ रे, थारो काँई करे डर भव रे॥
काटन वाला सूं बेर नहीं है, नहीं सींचन को सनेह रे।
जे कोई बावे कंकर पत्थर, उनको भी फल देइ रे॥
पवन चलावे इन्द्र झकोले, दुख सुख आपहि सहि रे।
सीत गहाम तो शिर पर सहिहै, पन्छिन को सुख देइ रे॥
आसन अचल मनसा नहीं डोले, तू ध्यान धणी को धेइ रे।
जे तूं चावे मोक्ष जीवको, तो नाम निरंजन लेइ रे॥
जैसे चात्रग घन को रटत है, वैसे चरण चित धर रे।
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, भक्ति का रस लेइ रे॥⁹⁴

प्रभु हाथ बिकानी

मीराबाई कहती हैं कि जिस दिन मुझे प्रभु ने दर्शन दिए, उसी दिन से उनका मनोहर स्वरूप मेरे अंतर में समा गया है और अब मेरे नेत्रों को उन्हें ढूँढ़ते रहने की आदत सी पड़ गई है। मैं अपने प्रियतम के बिना कैसे जीवित रहूँ, क्योंकि वे ही मेरे प्राणों के आधार हैं। मैं तो अपने प्रभु के दर्शन करके उनके हाथों बिक गई हूँ। अब लोग भले ही कहें कि मीरा बिगड़ गई है, मुझे तो सिर्फ प्रभु ही चाहिए:

नैणां मोरे बाण पड़ी, साँई मोहि दरस दिखाई। (टेर)
चित चढ़ी मेरे माधुरी मूरत, उर बिच आन अड़ी॥
कैसे प्राण पिया बिन राखूँ जीवण मूर जड़ी॥
कबकी ठाढ़ी पंथ निहारूँ, अपणे भवन खड़ी॥
मीराँ प्रभु के हात बिकानी, लोग कहे बिगड़ी॥⁹⁵

व्यर्थ के धंधे

मीराबाई की यह गुजराती रचना मनुष्य को चेतावनी देती है कि अपने अनमोल जन्म को सांसारिक धंधों में खोकर न गँवा दे। मनुष्य अपना पूरा जीवन संसार की मोह-माया में बिताकर अंत समय में पूजा-पाठ, दान-पुण्य आदि करके मुक्ति पाना चाहता है। मीराबाई कहती हैं कि यह सब केवल अपने आप को धोखा देना है। घर में आग लगने पर कुआँ खोदने जाना या घर में चोरी हो जाने के बाद दीपक जलाना अर्थहीन है। जब सरोवर सूखा था तब बाँध नहीं लगाया, जब पानी सब बह जाएगा तो बाँध लगाने का क्या फ़ायदा? लोग मृत्यु के समय तुलसी मँगवाते हैं, तिलक लगाते हैं, दीया जलाते हैं और मरनेवाले को इष्टदेव का नाम सुनाते हैं। मीराबाई कहती हैं, हे अज्ञानी लोगो, ये सब व्यर्थ के धंधे हैं। परमात्मा को प्राप्त करने का प्रयास समय रहते करना चाहिए:

पहेली प्रभु शुं प्रीत न बांधी, अन्ते संत मनावो रे॥
घर लाग्युं ने कूप खोदायो, केम अग्नि होलवाशे रे।
चोरो तो धन हरी गया पछे, दीपकथी शुं थाशे रे॥
बालपणुं रमवामां खोयुं, जोबन जुवतीनी जोडे रे।
वृद्ध थये छैयां छोकरां व्हालां, मरतां मागे मुक्ति मोटे रे॥
सूके सरोवरे पाल न बांधी, वारी गयुं ज्यारे वहीने।
शुं करवा पछी पाल बांधो छो, साचीशी समजण सहीने रे॥

तुलसी मंगावोने तीलक बनावो, साहेब नाम सुणावो रे।
मीराँ कहे अज्ञानी लोको, फोकट फंद करवो रे॥⁹⁶

दीवानी मीरा

अपने प्रेम की तन्मयता और आत्मिक आनंद में लीन हो मीराबाई कहती हैं कि सांसारिक दृष्टि से वे दीवानी हो गई हैं और उनके पास इसका कोई इलाज नहीं है। अपने शरीररूपी मंदिर में शब्द के नाद में लीन हो, वे आंतरिक मंडलों में गमन करती हैं और उन्हें अब अपना शरीर पराया प्रतीत होता है। जिस प्रकार मिट्टी के कलश के टूटने पर पानी बिखर जाता है, उसी प्रकार उनकी आत्मा शरीर के बंधनों से मुक्त हो अंतर के मंडलों में गमन करती है। अंदर वे सतगुरु के चरणों में पहुँच गई हैं और सच्चे अर्थों में रानी बन गई हैं:

मीराँ हो गई दीवानी, मैं कैसी करूँ रे॥
अपने मंदिर में ढोलक बजावे,
ढोलक के नाद में राम नाम गावे॥
फूट गया कलसा बिखर गया पाणी,
उड़ गया हंसा ये काया बिरानी॥
हाट बजार में मीराँ की बानी,
सद्गुरु के चरणों में मीराँबाई राणी॥⁹⁷

बुँदमों बुँद समाय रही

विरह की पीड़ा तथा प्रियतम के साथ मिलाप करने की व्याकुलता प्रेम की ज्वाला को और प्रज्वलित करती है। इस प्रकार विरह, सच्चे प्रेम को और दृढ़ बनाता है तथा प्रभु-मिलाप के मार्ग में सीढ़ी का काम करता है। इन दो

पदों में मीराबाई प्रियतम से मिलाप के आनंद का भावपूर्ण वर्णन करती हैं। वे कहती हैं कि मैं अपने प्रिय प्रभु में समाकर उसी का ही रूप हो गई हूँ, मेरी ज्योति उस महान प्रकाश में समाकर प्रकाश का ही रूप हो गई है, मेरी आत्मारूपी बूँद परमात्मारूपी समुद्र में समाकर समुद्र हो गई है तथा अपने प्रियतम में लीन होने की मेरी अनादि आकांक्षा पूर्ण हो गई है:

सहेलियाँ साजन घर आया हो॥

बहोत दिनाँ की जोवती विरहिणी पिव पाया हो॥

रतन करूँ नेवछावरी ले आरति साजूँ हो।

पिव का दिया सनेसड़ा ताहि बहोत निवाजूँ हो॥

पाँच सखी इकठी भई मिलि मंगल गावै हो।

पिय की रली बधावणा आणंद अंग न मावै हो॥*

हरि सागर सूँ नेहरो नैणां बँध्या सनेह हो।

मीराँ सखी के आँगणै दूधाँ बूठा मेह हो†॥⁹⁸

आई देखन मनमोहन कूँ मोरे मनमों

छबि छाय रही॥

मुख पर को अँचलो दूर कियो तब,

ज्योत में ज्योत समाय रही॥

सोच करे अब होत कहा है,

प्रेम के फंदे में आय रही॥

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर,

बुँदमों बूँद समाय रही॥⁹⁹

* पिय...हो=प्रियतम से मिलाप की प्रसन्नता में सखियाँ आनंद के साथ बधाई के मंगल-गीत गा रही हैं।

† आँगणै...हो= आँगन में दूध की वर्षा हो रही है अर्थात् सब मनोकामनाएँ पूर्ण हो रही हैं।